देवयानी

उपन्यासकार

यज्ञदत्त शर्मा

१९६२

साहित्य प्रकाशन

मालीवाड़ा, दिल्ली

प्रकाशक : साहित्य प्रकाशन
मालीवाड़ा, दिल्ली

मूल्य : दो रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक : श्री कम्पोजिंग केन्द्र द्वारा, सम्राट् प्रेस
पहाड़ी धीरज, दिल्ली ।

—१—

भारत-भूमि पर आर्यों और अनार्यों का परस्पर संघर्ष बड़ी तीव्र गति के साथ चल रहा था। आर्य-शक्ति ह्रासोन्मुख थी और अनार्य-शक्ति देश में प्रबल होती जा रही थी। अनार्यों का आर्यों पर, जहाँ भी संघर्ष छिड़ता था, विजय होती थी। आर्य राजा यह देखकर भयभीत हो उठे थे। उन्हें अपने सर्वनाश की आशंका होने लगी थी और लगने लगा कि भारत-भूमि पर अनार्यों का साम्राज्य छा जायगा।

इस समय आर्य-शक्ति के मुख्य संचालक युवराज ययाति थे और अनार्य-शक्ति के महाराज वृषपर्वा। दोनों ही बहुत पराक्रमी राजा थे परन्तु वृषपर्वा को अपने गुरु शुक्राचार्य का दिशादर्शन प्राप्त था। आचार्य शुक्राचार्य अपने समय के महान् राजनीतिज्ञ, समाज-शास्त्री और धर्माचार्य थे। तीनों विद्याओं का अनुपम सामंजस्य विधाता ने उनमें स्थापित किया था, जिससे उन्होंने अपनी नीति द्वारा संचालित अनार्य-राज्यों में संजवनी शक्ति का संचार किया। अनार्य-राज्यों को श्री शुक्राचार्य की विद्याओं ने अपूर्व शक्ति प्रदान की और उसीके फलस्वरूप इन्होंने आर्य-शक्तियों को त्रस्त कर दिया। अनार्यों की विजय-पताकाएँ देश के कोने-कोने में फहराती दिखलाई दीं और आर्यों के दिल बुझने लगे। उनका साहस क्षीण होने लगा और वे अपने उद्धार का मार्ग सोचने लगे।

आर्यों के राज्याचार्य सतयुगी समय के संत गुरु वृहस्पति थे। यह बहुत ही सरल स्वभाव के सात्त्विक ब्राह्मण थे। धर्म-नीति के प्रकांड पंडित थे, समाज-शास्त्र के भी आचार्य थे, परन्तु राजनीति के आधुनिकतम रूप में प्रवेश करने की उनकी प्रवृत्ति नहीं होती थी। इसीलिए यह शुक्राचार्य की राजनीति के सम्मुख बराबर हारते जा रहे थे।

वृहस्पतिजी के मन में हार्दिक पीड़ा उत्पन्न होने लगी कि उनकी इस कमी के कारण आर्यों की शक्ति बराबर क्षीरण होती जा रही है।

आचार्य वृहस्पति ने अपनी निर्बलता को भली प्रकार परखकर और यह निश्चय करके कि अब आर्य-शक्ति का उद्धार आधुनिकतम राजनीति का परिचय प्राप्त किये बिना नहीं हो सकता, आर्य-राज्यों की एक विराट सभा का आयोजन किया जिसमें देश के सभी आर्य-राज्यों के राजाओं, विद्वानों तथा सम्मानित व्यक्तियों ने भाग लिया।

युवराज ययाति ने सभा का प्रबन्ध अपनी राजधानी में किया और अतिथियों के सम्मानार्थ सुप्रबन्ध किया गया।

सभा प्रारम्भ हुई। आचार्य वृहस्पति ने सभा का आशय सबके सम्मुख रखते हुए कहा, "आर्यजनो, आज की इस सभा का आयोजन हमने आर्यों के सम्मुख प्रस्तुत एक विकट समस्या को सुलझाने का उपाय खोजने के लिए किया है।

आप लोग देख रहे हैं कि अनार्य-शक्ति देश में बलवती होती जा रही है। आर्य राजा जहाँ भी अवसर आता है, परास्त होते हैं। उनकी धन और जन-शक्ति का ह्रास हो रहा है।

यह सब आप जानते हैं किस लिए ? यह मेरी कमी है। मैं अपनी दुर्बलता को आप लोगों से छिपाकर नहीं चलाना चाहता। मैं नहीं चाहता कि आप लोग अंधकार में रहें और मैं वर्तमान स्थिति के अनुसार आपका आचार्य-पद ग्रहण किये रहूँ।"

आचार्य वृहस्पति द्वारा अपनी इतनी कठोर आलोचना पहले कभी किसीने उनके मुख से नहीं सुनी थी। अपनी भूलों को स्वीकार करने का महान् गुरण उनमें पहले से था और अपने आचार्यत्व के आवरण में उन्होंने कभी अपनी दुर्बलताओं को छिपाने का प्रयास नहीं किया था, परन्तु आज उनका जो रूप सम्मुख आया उसे देखकर सभा में उपस्थित जन स्तब्ध रह गए। उन्हें आशंका हो उठी कि कहीं इस परिस्थिति में

आचार्य वृहस्पति आचार्य-पद का त्याग न कर दें और उन लोगों का, जो थोड़ा-बहुत सहारा है वह भी उनके हाथों से जाता रहे।

सभा में सन्नाटा छा गया। उपस्थित जनों को पसीना आ गया। युवराज ययाति आचार्य वृहस्पति के तेजपूर्ण चेहरे पर आँखें गड़ाकर देखते हुए बोले, "आचार्य ! आपके इस कथन ने आर्य-जनों को हतोत्साहित कर दिया। तब क्या आप अपना संरक्षण-कर हम लोगों के सिर से उठा लेना चाहते हैं ?"

युवराज ययाति के कथनानुसार सभा में उपस्थित आर्यजनों के चेहरों पर व्याप्त उद्विग्नता, भय और चिंता का अध्ययन करके आचार्य वृहस्पति बोले, "मेरे इस सत्य-कथन से आप लोग भयभीत हो उठे। यह भयभीत होने की बात नहीं है। अपनी दुर्बलता को समझने और उसका उपाय खोजने की बात है।

मुझमें यह तनिक-सी दुर्बलता है तो क्या हुआ ? मैं धर्म-नीति का आचार्य हूँ और धर्म-नीति के ही अंतर्गत विश्व की सब नीतियाँ समाविष्ट हो जाती हैं। सब नीतियों का जन्म धर्म-नीति से ही हुआ है और सब नीतियाँ धर्म-नीति में ही आकर मिल जाती हैं।

आज की इस सभा का आयोजन भी इसी धर्म-नीति के आधार पर किया गया है और उसका पालन करता हुआ मैं आर्य-शक्ति का संचालन उस समय तक करता चला जाऊँगा जब तक इस शरीर में प्राण शेष रहेंगे। धर्म की सर्वदा विजय होती है। आपकी भी विजय होगी। धर्म-नीति के सम्मुख राजनीति ठहर नहीं सकती। परन्तु मैं देख रहा हूँ कि देश और काल की परिस्थिति के अनुसार उसका पूर्ण ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है।"

आचार्य शुक्राचार्य के इन शब्दों ने आर्यों के निराशापूर्ण जीवन में आशा का संचार किया। उनके मस्तिष्क में पैदा होने वाली परेशानी दूर हुई और सबने एक स्वर में आचार्य वृहस्पति का जय-नाद किया।

सभा आत्म-संतोष से पूर्ण हो उठी । सभीके नेत्रों में आशा दिखाई दी ।

युवराज ययाति को हार्दिक प्रसन्नता हुई ।

सभा के एक कोने में बैठा आचार्य वृहस्पति का पुत्र कच अपने पिता के कथन को बड़े ध्यान से सुन रहा था । उनके मस्तिष्क में पैदा होने वाली समस्या का गम्भीर अध्ययन कर रहा था । उसकी सही दशा सोच रहा था और सोच रहा था कि उसे कैसे सुलझाया जाय ।

आचार्य वृहस्पति फिर बोले, "उपस्थित आर्यजनो ! आज जो समस्या हमारे सम्मुख है उसको सुलझाने के लिए मुझे एक ऐसे ब्रह्मचारी की आवश्यकता है जो हमारी धर्म और समाज-नीति का प्रकांड पंडित हो । उसे अपना जीवन इस समस्या के सुलझाने के लिए अग्नि-कुंड में झोंक देना होगा । क्या कोई ऐसा वीर है इस सभा के मध्य ?"

आचार्य वृहस्पति की यह बात सुनकर सभा में फिर सन्नाटा छा गया । सभी लोग एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे । किसी में यह साहस नहीं हुआ कि जो अपने-आपको अग्नि-कुंड में झोंकने को तत्पर हो ।

तभी पीछे से आवाज आई, "मैं आर्य-जाति के उद्धार के लिए अपने-आपको अग्नि-कुंड में आहुत करने के लिए तय्यार हूँ पिताजी ! आज्ञा कीजिए, मुझे क्या करना होगा ?"

इस महान् कार्य के लिए अपने समक्ष अपने इकलौते पुत्र कच को खड़े देखकर आचार्य वृहस्पति का हृदय पुष्प के समान खिल गया ।

समस्त सभासदों ने हर्षोल्लास के साथ कच को अपने कंधों पर उठा लिया और लाकर आचार्य वृहस्पति के पास खड़ा कर दिया ।

युवराज ययाति ने सहर्ष अपने कंठ में पड़ा पुष्पहार उतारकर ब्रह्मचारी कच के गले में डालते हुए कहा, "आर्य-भूमि त्यागी और तपस्वियों से रिक्त नहीं हुई है अभी आचार्य वृहस्पति ! अपने मित्र कच को इस महान् यज्ञ में अपनी आहुति के लिए प्रस्तुत देखकर मेरे हृदय के हर्ष का पारावार नहीं रहा ।

मैं देख रहा हूँ कि यह ब्रह्मचारी कच नहीं आचार्य कच मेरी आँखों के सम्मुख खड़े हैं।"

आर्य-जनों ने 'कच की विजय हो', ये शब्द उच्चारण किये और आशापूर्ण नेत्रों से कच के सुन्दर वेश और सुहावनी सूरत को देखा।

तभी आचार्य वृहस्पति गम्भीर वाणी में बोले, "पुत्र कच ! तुमने इस महान् यज्ञ में अपनी आहुति देने का जो संकल्प किया है उसने मेरा मस्तक आर्य-जगत् के सम्मुख सर्वदा के लिए उन्नत कर दिया। मुझे गर्व है कि तुम-जैसा त्यागी और व्रती वीर मेरा पुत्र हुआ। जब तक विश्व में आर्य-संस्कृति विद्यमान रहेगी उसके मध्य तुम्हारे त्याग, तुम्हारी तपस्या और तुम्हारे पांडित्य का सूर्य दमदमाता रहेगा।"

पूज्य पिता के मुख से आशीर्वाद ग्रहणकर ब्रह्मचारी कच घुटने टेककर आचार्य वृहस्पति के सम्मुख हाथ जोड़कर बोला, 'पूज्य पिता के आशीर्वाद से मैं आपकी हर आज्ञा का पालन करने में समर्थ हूँगा। मेरा मन आचार्य की आज्ञा सुनने के लिए उतावला हो रहा है। आचार्य वृहस्पति अपने प्रिय पुत्र तथा शिष्य को आज्ञा करें कि उसे क्या करना होगा ?"

आचार्य वृहस्पति बोले, "पुत्र कच ! तुम्हें आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में जाना होगा। ब्रह्मचर्य व्रत के साथ आचार्य शुक्राचार्य का शिष्य बनकर राजनीति का अध्ययन करना होगा। अनार्य राज्य में गुप्त वेश से रहना होगा और वहाँ से इस विद्या को ग्रहणकर आर्यों के बीच लौटना होगा और फिर यहाँ आकर धर्म, समाज और राजनीति के सामंजस्य द्वारा आर्यों में संजीवनी-शक्ति का संचार करना होगा।

तुम्हारी इस संजीवनी-शक्ति को प्राप्त कर आर्य-संस्कृति का पुनरुत्थान होगा। ह्रासोन्मुख आर्य-जाति उन्नत दशा को प्राप्त होगी। आर्यों की विजय होगी, धर्म की रक्षा होगी और देश में सुख तथा शांति के साम्राज्य की स्थापना होगी।

यह यात्रा तुम्हें पैदल करनी होगी।"

आचार्य कच ने आदरपूर्वक अपने पिता के चरण छुए। मित्र ययाति के कंठ में अपनी बाँहें डालकर प्रेम-भेंट की और उपस्थित आर्य-जनों को सादर प्रणाम किया।

आचार्य कच अपनी यात्रा पर चल पड़े। आर्य-समुदाय बहुत दूर तक आचार्य कच को छोड़ने के लिए उनके साथ-साथ गया और अंत में उन्हें विदा करके ययाति की राजधानी को लौटा।

—२—

आचार्य कच पैदल अपनी यात्रा पर चल पड़े। उनके मन में असीम उत्साह था। आर्य-जाति के उद्धार का लक्ष्य उनके सम्मुख था।

ब्रह्मचारी कच बीहड़ वन और भयंकर जानवरों के बीच से निकलता हुआ निर्भीक अपने मार्ग पर बढ़ रहा था। मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को वह मुस्कराकर पार करता जा रहा था। गहन वन, गिरि, काननों को पार करते हुआ वह कई मास की कठिन यात्रा तय करके एक दिन प्रातःकाल एक पर्वत-शिखर पर पहुँचा। बहुत थक गया था वह और इधर कई दिन से उसकी यात्रा ऐसे सूखे वनों के बीच में हुई थी कि जहाँ कोई खाद्य-वस्तु उसे प्राप्त नहीं हो सकी। भूख से उसके पेट की आँतें सिकुड़ गई थीं।

वह कुछ देर विश्राम करने के लिए एक शिला पर बैठ गया। तभी सुदूर पूर्व में उसे एक नगरी दिखाई दी।

कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् कच उस नगरी की ओर चल पड़ा। उसे आशा बँधी कि वहाँ उसे भोजन मिल जायगा।

कच धीरे-धीरे उस नगरी की ओर चल पड़ा, परन्त भूख और

प्यास से वह इतना निर्बल हो गया था कि पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। उसका बदन पिंजर के समान तीव्र वायु के झकोरे खा-कर काँप उठा।

परन्तु इतनी थकान के पश्चात् भी उसके नेत्रों में लक्ष्य पर पहुँचने की ज्वाला जल रही थी। उसके हृदय का उत्साह किसी प्रकार क्षीण नहीं पड़ा था। उसके बदन की स्फूर्ति में कोई कमी नहीं हुई थी। थोड़ा खा-पीकर फिर यात्रा पर आगे बढ़ने का उसके हृदय में असीम उत्साह था।

ब्रह्मचारी कच थोड़ा आगे बढ़ा तो नगरी के उद्यानों पर से तैरती हुई शीतल पवन के झोंके ने उसके तप्त बदन को छुआ और शीतलता प्रदान की। कई दिन की गर्म लुओं के मध्य में यात्रा करते-करते उसका बदन जल उठा था। सूखे वनों के मध्य चलने वाली वायु भीषण वेग वाली और गर्म थी। यहाँ की शीतल पवन ने कच को एक नए राज्य में प्रवेश करने का संदेश दिया।

कच ने वहीं एक पर्वत की चोटी पर खड़े होकर देखा तो पाया कि उसके एक ओर विशाल मरु-भूमि का खण्ड दिखाई दे रहा था और दूसरी ओर हरी-भरी खेती और बाग-तड़ागों से युक्त भूमि। एक ओर समृद्धि बिखरी पड़ी थी और दूसरी ओर भयानक विनाश की काल-छाया!

इस भयानक काल-छाया को चीरकर आने की स्मृति कच के मस्तिष्क में आई तो वह सिहर उठा। उसका समस्त बदन कम्पायमान हो गया।

वह फिर एक पगडंडी से होता हुआ उसके सामने कुछ दूर प्रदेश में बसी बस्ती की ओर बढ़ चला।

कच को आशा थी कि उसे इस नगरी में पहुँचकर विश्राम करने की सुविधा अवश्य मिलेगी और उसकी क्षुधा तथा प्यास को शान्त करने के लिए भोजन-सामग्री और जल की भी व्यवस्था हो जायगी।

वह साहस के साथ आगे बढ़ा और चलता-चलता एक उद्यान के निकट पहुँच गया। उद्यान के अन्दर उसने कुछ जल-पक्षी उड़ते देखे तो सोचा कि इसमें निश्चय ही कोई जलाशय होगा। यह अनुमान कर वह उद्यान की ओर बढ़ गया, परन्तु थक इतना गया था कि अब दो पग रखना भी उसके लिए कठिन हो गया था।

कच अमराइयों के बीच से होता हुआ जलाशय की ओर जा रहा था कि उसके बदन ने एक दम जवाब दे दिया। उसके पैर लड़खड़ा उठे और वह भूमि पर गिरकर अचेत हो गया।

कच चलते-चलते संध्या समय तक यहाँ पहुँच पाया था। उसी समय आचार्य शुक्राचार्य की रूपवती कन्या देवयानी और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा उद्यान-विहार के लिए यहाँ आईं। वे भी घूमती-घूमती अमराइयों के बीच से निकलकर जलाशय की शोभा देखने के लिए उसके किनारे की ओर बढ़ रही थीं।

मार्ग में उन्होंने एकआदमी आम्र-वृक्ष के नीचे अचेत पड़ा देखा।

देवयानी उसे देखकर वहीं खड़ी हो गई और उसके पास जाकर उसकी दशा देखती हुई शर्मिष्ठा से बोली, "सखी शर्मिष्ठा, यह यात्री मरुखण्ड के बीच से निकलकर आया प्रतीत होता है। भूख-प्यास से देख रही हो इसका बदन पिंजर हो गया है। तुम तुरन्त जाकर जलाशय से किसी पात्र में पानी भर लाओ।"

शर्मिष्ठा देवयानी की बात सुनते ही जलाशय की ओर दौड़ गई।

देवयानी आचार्य कच के गौर वर्ण और सुडौल बदन को देख रही थी। कच का उन्नत मस्तक, शुक-जैसी नासिका और चौड़ा वक्षस्थल उसके हृदय पर मोहनी-सी डालते जा रहे थे।

तब तक शर्मिष्ठा एक पात्र में जल लेकर आगई।

देवयानी ने जल-पात्र शर्मिष्ठा के हाथ से लेकर यात्री के मुख पर छिड़का और फिर पास ही खड़े एक ताड़-वृक्ष का पत्ता लेकर उससे

हवा की ।

शीतल जल और पवन ने ब्रह्मचारी कच की मूर्छा को भंग कर दिया । वह उठकर बैठा हो गया और उसने आश्चर्य-चकित दृष्टि से शर्मिष्ठा तथा देवयानी की ओर देखा । वह स्तब्ध-सा रह गया उन्हें देखकर और उनकी कृपा के प्रति उसके हृदय में धन्यवाद के भाव जाग्रत हो उठे । परन्तु वह निश्चय नहीं कर सका कि उन्हें किस रूप में सम्बोधित करके अपने धन्यवाद के शब्द प्रकट करे ।

ब्रह्मचारी कच की यह दशा देखकर देवयानी, मधुर मुस्कान के साथ बोली, "बहुत थक गए हो यात्री ! सम्भवत: मरुप्रदेश की यात्रा करके आ रहे हो । तुम भूख-प्यास से भी त्रस्त मालूम देते हो । इस प्रदेश को पार करके आने वाले व्यक्तियों की यही दशा होती है ।"

देवयानी के सहानुभूतिपूर्ण शब्दों को सुनकर ब्रह्मचारी कच बोला, "मेरी दशा देखकर आपने जो अनुमान लगाया वह सत्य ही है, परन्तु अब इतनी देर मूर्च्छित पड़े रहकर मुझे विश्राम मिल गया । लगता है जैसे मेरे बदन की सब थकान जाती रही, परन्तु भूख और प्यास के कारण प्राण निकले जा रहे हैं ।"

यह सुनते ही देवयानी ने जल-पात्र कच की ओर बढ़ा दिया और ब्रह्मचारी कच ने उसमें से जल पिया । जल पीकर फौरन कच के नेत्र खुल गए । उसके बदन की रही-सही थकान भी जाती रही । वह मुस्कराकर बोला, "आपके इस जल ने मेरे बदन की जलन को बुझा दिया । मेरे अन्दर अब फिर बिना भोजन किये ही आगे बढ़ने की शक्ति आ गई । मैं अब सुगमतापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर जा सकता हूँ ।"

ब्रह्मचारी कच का सुन्दर रूप देवयानी के नेत्र-द्वारों से उसके हृदय-कक्ष में प्रवेश करता जा रहा था । वह एकटक उसके मुख-मंडल की कांति को निहार रही थी । अनायास ही उसका कोमल हृदय ब्रह्मचारी कच की ओर को खिचता जा रहा था । उसके नेत्र ब्रह्मचारी के मुख

पर पड़कर अपलक हो गए थे। देवयानी ने अनुभव किया कि मानो उसे मूर्च्छा-सी आने लगी थी।

'विधाता की सुन्दर कलाकृति है।' देवयानी का मन कह उठा। यह इस लोक का प्राणी नहीं, अवश्य ही देवलोक से उतरकर आया है।

ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर देवयानी मधुर कंठ से बोली, "क्या मैं जान सकती हूँ ब्रह्मचारी! कि तुम इतनी तत्परता के साथ इतनी कठिन तपस्यापूर्ण यात्रा करके किस लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हो?"

देवयानी की सरल स्वाभाविक बात सुनकर ब्रह्मचारी कच बोला, "आपने अपना परिचय दिए बिना मुझसे यह सीधा प्रश्न करके मुझे घोर असमंजस में डाल दिया। अपरिचित व्यक्ति के सम्मुख अपना लक्ष प्रकट करना नीति के विरुद्ध बात है, परन्तु आपका सदय व्यवहार मुझे आज्ञा देता है कि मैं अपना लक्ष्य आप पर प्रकट कर दूँ।

मैं एक ब्रह्मचारी हूँ। मेरा नाम कच है। ज्ञान का जिज्ञासु हूँ। बहुत से आचार्यों के पास जा-जाकर धूल छान आया हूँ। कोई धर्म-नीति का आचार्य मिला तो कोई समाज-नीति का और कोई कोरा राजनीति का— मुझे तीनों नीतियों का सामंजस्य किसी आचार्य में नहीं मिला। अधिकांश आचार्य ऐसे ही मिले कि जिन्हें आता-जाता कुछ था नहीं और दम्भ से अपने को तीनों नीतियों का आचार्य मान बैठे थे।

एक आचार्य ने अपनी दुर्बलता स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करके मुझसे कहा, "पुत्र! तुम यदि तीनों नीतियों में निपुण होकर तीनों के सामंजस्य से संजीवनी-शक्ति के अधिकारी होना चाहते हो तो तुम आचार्य शुक्राचार्यजी के पास जाओ। तीनों नीतियों का ज्ञान तुम्हें उनके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं करा सकता।"

ब्रह्मचारी के मुख से अपने पिता शुक्राचार्य की प्रशंसा सुनकर देवयानी का हृदय खिल उठा। उसकी आत्मा प्रसन्न हो गई।

ब्रह्मचारी कच बोला, "मेरा लक्ष्य आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में पहुँचकर उनके गुरुपद छूना और विद्यार्थी बनकर अध्ययन करना है। गुरु-सेवा से जो ज्ञान प्राप्त होगा उसे ग्रहण करूँगा।"

ब्रह्मचारी के उद्देश्य से परिचित होकर देवयानी के मानस में अमृत की धारा प्रवाहित हो चली। उसे लगा कि मानो विधाता ने यह ज्ञान-गंगा उसीकी दिशा में प्रवाहित की है जिसमें स्नान करके वह मुक्त हो सकेगी। उसके हृदय में प्रेम-रस का संचार हो उठा। उसके नेत्रों में सौंदर्य की छटा छा गई। उसकी रूप-कांति में निखार आ गया। वह मुग्ध-वाणी में बोली, "ब्रह्मचारी कच तुम अपनी तपस्या और घोर परिश्रम के फलस्वरूप अपने प्रथम लक्ष्य पर पहुँच चुके। तुम इस समय आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम की पुण्य-भूमि में हो। यह उद्यान आचार्यजी के ही आश्रम का एक भाग है। यह आश्रम कई मील तक फैला हुआ है।

मैं आचार्य शुक्राचार्य की इकलौती कन्या देवयानी हूँ और यह मेरी सहेली यहाँ के राजा वृषपर्वा की सुपुत्री, शर्मिष्ठा।"

देवयानी की बात सुनकर ब्रह्मचारी कच के बदन की रही-सही थकान भी जाती रही। उसमें नवोल्लास की नवीन स्फूर्ति आ गई। उसे अपने अन्दर नव-शक्ति का संचार होता हुआ प्रतीत हुआ। उसका हृदय आशा से भर उठा। उसका उन्नत मस्तक और नेत्र आकाश की ओर उठ गए। उसकी भूख-प्यास सब अनजाने ही जाने कहाँ चले गए। वह फिर सामने खड़ी रूप की प्रतिमा देवयानी के सुन्दर मुख-मंडल पर दृष्टि डालकर सरल वाणी में बोला, "ब्रह्मचारी कच आचार्य शुक्राचार्य की पुत्री को सादर नमस्कार करता है और साथ ही महाराज वृषपर्वा की रूपवती सुपुत्री शर्मिष्ठा को भी।"

ब्रह्मचारी कच के इस वाक्य को सुनकर देवयानी गद्‌गद हो उठी। उसका हृदय अबाध गति से ब्रह्मचारी की ओर खिंचता जा रहा था। उसके मन में मिठास-सा भरने लगा था।

सन्ध्या का धूमिल प्रकाश बातों-ही-बातों में लुप्त हो चुका था। रात्रि का अंधकार चारों दिशाओं में छा गया। चन्द्रमा निकल आया।

चन्द्रमा की चाँदनी में देवयानी ने ब्रह्मचारी कच को और ब्रह्मचारी कच ने देवयानी को देखा तो दोनों के बदन में सिहरन-सी आ गई।

शर्मिष्ठा, जो अभी तक मुग्धा बनी खड़ी थी, उसे उन दोनों का यह आकर्षण भला नहीं लगा। उसके मन में ब्रह्मचारी कच के देवयानी पर रीझ उठने से कुछ जलन-सी पैदा हो गई। वह अपने को कुछ कम सुन्दरी नहीं गिनती थी, परन्तु फिर भी देखती थी कि राज्य में या आश्रम में जो बाहर के व्यक्ति आते थे वे सब देवयानी के ही रूप की प्रशंसा करते थे। शर्मिष्ठा के रूप की ओर किसीका ध्यान नहीं जाता था।

इस बात से शर्मिष्ठा के हृदय में महान् पीड़ा होती थी और वह ऊपरी प्रेम-भाव रखने पर भी देवयानी से मन-ही-मन जलने लगी थी। उसके मन में एक डाह-सी पैदा हो गई थी।

शर्मिष्ठा तभी देवयानी की ओर देखकर बोली, "बहन देवयानी, तुम भी बड़ी विचित्र हो। कहाँ भौंरों को तुम्हारे रूप पर मँडराना चाहिए कि तुम स्वयं भौंरों पर मँडराने लगती हो।"

शर्मिष्ठा की मधुर बात सुनकर देवयानी तो तनिक लजा गई, परन्तु ब्रह्मचारी कच बोला, "मेरी उपमा राज-कन्या शर्मिष्ठा ने भौंरे से दे डाली, परन्तु इस नगरी में प्रवेश करने से पूर्व मैं बता दूँ कि यह रूप पर मँडराने वाला भौंरा नहीं है। यह विधाता की अलौकिक लीला को देख रहा है। प्रकृति के असीम सौंदर्य को देख रहा है और देख रहा है कि विधाता ने आचार्य-कन्या के रूप में दोनों का सामंजस्य स्थपित करके एक ऐसी प्रतिमा का निर्माण कर दिया है जिसका रूप वन्दनीय हो उठा है, जिसका आकर्षण विधाता की अनुपम कला का दिग्दर्शन करता है, जिसके रूप से माधुर्य बरस रहा है, जिसके रूप की चंद्रिका वन-उपवन में छिटक रही है।

राज-कन्ये ! सच कहो, क्या यह उद्यान में बिखरी हुई चंद्रिका तुम्हारी सखी के मुख-चन्द्र की आभा नहीं है ? क्या मैं यह सब स्वप्न देख रहा हूँ। मैंने स्वप्न जीवन में कभी नहीं देखा। जो कुछ भी देखा है वह प्रत्यक्ष देखा है और विधाता का वही प्रत्यक्ष रूप मेरे सम्मुख इस समय भी खड़ा है।''

ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर शर्मिष्ठा के मन में और भी जलन पैदा हो गई। देवयानी के रूप को वह रूप नहीं गिनती थी। उसे देवयानी का रूप अपने रूप के सम्मुख हेय प्रतीत होता था। परन्तु इन अंधे दर्शकों की दृष्टि को वह क्या करे ? वह देखती थी कि इस नगरी में जो आते थे वे सब अंधे ही आते थे। उसके रूप को पहचानने की उनमें क्षमता ही नहीं थी।

दिल की जलन को हृदय-कक्ष में छिपाकर शर्मिष्ठा मुस्कराकर बोली, ''बहन देवयानी का रूप सचमुच ऐसा ही है ब्रह्मचारी ! परन्तु बचकर रहना तुम ! यह हर भौंरे को इसका लोभी बना देता है। इस पुष्प पर एक बार मँडराकर भौंरा फिर उड़ नहीं सकता। अब तो तुम मँडराते-मँडराते आ ही गए हो इस पुष्प पर, देखती हूँ तुम कैसे मुक्ति पाते हो इससे।''

शर्मिष्ठा की बातें सुनकर देवयानी के मन में रस की धारा प्रवाहित होती जा रही थी। वह मन-ही-मन बहुत प्रसन्न थी, परन्तु ऊपर से वक्र दृष्टि करके बोली, ''सखी शर्मिष्ठा ! मैं देख रही हूँ कि तुम मर्यादा से बाहर होती जा रही हो।''

शर्मिष्ठा ने मुस्कराकर उत्तर दिया, ''प्रेम के मार्ग में कोई मर्यादा नहीं है देवयानी ! यह मार्ग मर्यादा-विहीन है।''

यह सुनकर ब्रह्मचारी कच बोला, ''जिसकी कोई मर्यादा नहीं होती शर्मिष्ठा, उसकी सबसे बड़ी मर्यादा होती है। प्रेम का उत्थान जितना सरल

है, उसका पतन भी उतना ही निकट है।"

ब्रह्मचारी कच की सैद्धान्तिक बात ने शर्मिष्ठा का मुख बंद कर दिया। वह मौन हो गई।

तभी हड़बड़ाकर देवयानी बोली, "ब्रह्मचारी कच, हमसे बड़ी भूल हुई। हम बातों में ऐसे संलग्न हो गए कि तुम्हारी भूख का हमें ध्यान ही विस्मरण हो गया। चलिए, अब आश्रम को चलें। पिताजी मेरी प्रतीक्षा में होंगे।"

तीनों प्राणी उद्यान से आश्रम की ओर चल पड़े। मार्ग में राज-पथ आ जाने पर शर्मिष्ठा ठहर गई। उसे दोनों ने विदा किया तो शर्मिष्ठा हाथ जोड़कर बोली, "ब्रह्मचारी कच, अनजाने में कोई मुझसे त्रुटि बन पड़ी हो तो क्षमा करना।"

यह सुनकर ब्रह्मचारी कच मुस्कराकर बोला, "राज-कन्या से कभी कोई त्रुटि नहीं हो सकती। उसकी त्रुटि में भी किसी शुभ कार्य का ही संदेश रहता है।"

ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर तीनों के मुख-मंडल खिल उठे। शर्मिष्ठा अपने महल की ओर चल दी। ब्रह्मचारी कच तथा देवयानी ने आश्रम की दिशा में प्रस्थान किया।

—३—

आश्रम में पहुँचकर देवयानी पहले ब्रह्मचारी कच को आश्रम की अतिथिशाला में ले गई। उसे एक कुटिया में ठहराया और मधुर कंठ से बोली, "तुम तनिक विश्राम करो ब्रह्मचारी! तब तक मैं तुम्हारे लिए भोजन का प्रबन्ध करती हूँ।"

ब्रह्मचारी कच बोला, "आचार्य-कन्ये देवयानी! यहाँ आकर तो न

जाने भूख कहाँ भाग गई। अभी कुछ देर पूर्व मैं भूख और प्यास से अचेत हो गया था परन्तु अब लग रहा है कि भूख रही ही नहीं।"

देवयानी मुस्कराकर भोजनशाला की ओर चली गई और ब्रह्मचारी कच झोंपड़ी से बाहर निकलकर आश्रम की शोभा को देखने लगा। प्रकृति का असीम सौंदर्य मानो सिमटकर इस आश्रम में आ भरा था। भाँति-भाँति के वृक्ष और उनसे लिपटी हुई बेलें उल्लास-भरी झूम रही थीं। वृक्षों और बेलों की पत्तियों के बीच रह गए झरोखों से निकलकर चाँदनी भूतल पर आ बिछी थी। कल-कल करके बहने वाले प्रपातों का पानी चाँदनी के प्रकाश से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो श्वेत कपूर पिघलकर बह चला था।

बेल-वितानों पर पक्षीगण विश्राम कर रहे थे। चिड़े-चिड़िए अपने बच्चों को सुलाकर आपस में चुहल कर रहे थे। कच की दृष्टि एक ऐसे ही चिड़े चिड़िया के जोड़े पर पड़ी जो प्रेम-बंधन में आबद्ध होकर एक-दूसरे की चोंच को पकड़कर मधुर चुम्बन ले रहे थे। कच आत्मविभोर हो उठा यह देखकर। प्रकृति की क्रोड़ में पक्षियों के इस मधुर मिलन को देखकर उसका मन खिल उठा।

कच ने चारों ओर दृष्टि फैलाई तो उसे लगा कि मानो इस आश्रम में सरस रस की धारा प्रवाहित हो रही थी। यहाँ की प्रत्येक वस्तु रस-पूर्ण थी। आनन्द की अलौकिक कल्पना का साम्राज्य था वहाँ।

उसने दो पग आगे बढ़कर देखा तो उसे एक गाय खड़ी मिली, जिसका बच्चा बड़े स्नेह से दुग्ध-पान कर रहा था। माता और पुत्र के प्रेम के प्रतीक थे दोनों। माता को दूध पिलाने और पुत्र को पीने में अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो रही थी।

कच ने यहाँ प्रेमी और प्रेमिका का प्रेम देखा, माता की ममता देखी और पुत्र का स्नेह देखा।

तभी देवयानी उसके लिए भोजन लेकर आ गई ।

देवयानी बोली, "भोजन करो ब्रह्मचारी !"

ब्रह्मचारी की दृष्टि देवयानी पर गई तो वह ठगा-सा रह गया । वह सोच नहीं सका कि आखिर कैसे विधाता इस रूप का निर्माण कर सका ! यौवन का विकास फूटा पड़ रहा था । देवयानी हल्के-हल्के मुस्करा रही थी ।

देवयानी का जो रूप कच ने देखा वह जीवन में प्रथम बार उसके नेत्रों के सम्मुख आया । उसने विधाता की इस कलाकृति की हार्दिक सराहना की । वह देखकर कुछ देर मौन खड़ा उसके रूप को निहारता रहा और फिर सरल वाणी से बोला, "देवयानी ! तुम क्या सचमुच इतनी सुन्दर हो ?"

ब्रह्मचारी का यह वाक्य सुनकर देवयानी का यौवन झंकृत हो उठा । उसके बदन का अंग-अंग इठलाकर बल खा उठा । उसके नेत्रों की पुतलियों में जाने कैसी मादकता आगई कि वह उसे सँभाल न सकी । उसने ब्रह्मचारी के बदन पर दृष्टि फेरी तो फिसलती चली गई और फिर कच के नेत्रों पर जाकर टिक गई ।

ब्रह्मचारी कच ने देवयानी के वदन में उठने वाले झंझावात को देख कर गम्भीरतापूर्वक कहा, "देवयानी ! रूप और यौवन प्रदर्शन की वस्तु नहीं हैं ।"

"मैं जानती हूँ ब्रह्मचारी !" देवयानी इठलाकर बोली । "परन्तु जिसने यह रूप और यह यौवन का उभार दिया है उसके सामने प्रदर्शन को भी क्या तुम प्रदर्शन कहोगे ब्रह्मचारी ! क्या यह सरिता का सरल बहाव नहीं है ? क्या इसमें प्रेम का स्वच्छ रूप प्रस्फुटित नहीं हो रहा ?"

ब्रह्मचारी कच मौन हो गया । वह देवयानी के आत्म-समर्पण की

हृदय से सराहना करके बोला, "देवयानी ! इतना शीघ्र क्या तुम सच-मुच इतनी आगे बढ़ गईं ? तुम्हें सोच-समझकर चलना चाहिए। परदेशी से क्या प्रीति ?"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "परदेशी जब अपने देश में आगया तो परदेशी कहाँ रहा ब्रह्मचारी ?"

ब्रह्मचारी कच बोला, "अच्छा लाओ, अब भोजन तो करा दो। बहुत भूख लगी है।"

देवयानी सचमुच भूल ही गई कि वह पत्तल में कुछ फल, भाजी और खाना लिये खड़ी थी। वह लजाकर वोली, "क्षमा करना मेरी इस लापरवाही के लिए। परन्तु क्या पूरा दोष मेरा ही रहा इसमें ?"

ब्रह्मचारी कच ने मुस्कराकर देवयानी के हाथ से पत्तल उठा ली और वहीं प्रपात के कल-कल बहते जल के निकट पड़ी शिला पर बैठकर खाना प्रारम्भ कर दिया।

वह कुछ खा कर बोला, "भूल हो गई देवयानी ! तुमसे तो पूछा ही नहीं।"

देवयानी ब्रह्मचारी कच को इस फुर्ती से खाते देखकर मन-ही-मन प्रसन्न होकर मुस्करा रही थी। अव ब्रह्मचारी की बात सुनकर बोली, "तुम पहले अपना पेट भर लो ब्रह्मचारी ! तुम्हारी भूख कई दिन की है। कुछ बचेगा तो मैं भी खा लूँगी।"

ब्रह्मचारी का हाथ खाते-खाते रुक गया। उसने पूछा, "कुछ बचेगा तो तुम खा लोगी; यह तुमने क्या कहा देवयानी !"

देवयानी मुस्कराकर वोली, "कुछ नहीं। आज हमें उद्यान से लौटने में देर हो गई थी ना। रसोइए ने एक पत्तल पर मेरा भोजन सुरक्षित रखकर चौका उठा दिया।

परन्तु तुम आनन्दपूर्वक भोजन करो, आज मुझे भूख नहीं है।

मैंने दोपहर को बहुत अधिक खा लिया था।"

ब्रह्मचारी मुस्करा दिया देवयानी के मुख की ओर देखकर और फिर पत्तल पर रखे फल उठाकर देवयानी की ओर बढ़ाकर बोला, "लो, ये तुम खालो देवयानी ! वरना तुम अपने मन में कहोगी कि आज न जाने कहाँ का भूखा आदमी तुम्हारे आश्रम में आकर तुम्हारा सब भोजन चट्ट कर गया।"

देवयानी बोली, "तुम खा लो ब्रह्मचारी, मैं सच कह रही हूँ मुझे भूख नहीं है।"

देवयानी की इस बात पर ब्रह्मचारी कच झूठा क्रोध प्रदर्शित करके बोला, "इसका अर्थ यह हुआ कि तुम मेरा भी खाना बन्द करना चाहती हो। लो, मैं भी नहीं खाता। मैंने भी आज दोपहर को इतना भोजन कर लिया था कि कुपच हो गया।"

ब्रह्मचारी कच का इस प्रकार मुँह फुलाकर रूठ जाना देखकर देवयानी हँस पड़ी और फल हाथ में लेते हुए बोली, "अच्छा लाओ मैं खाती हूँ। तुम खाना खाओ।" और फिर कुछ ठहरकर बोली, "ब्रह्मचारी, कच तुम अभिनय बहुत सुन्दर करना जानते हो।"

"अभिनय ! आश्चर्य दिखाकर गम्भीर वेश बनाकर ब्रह्मचारी कच बोला, "अरे, यह तुमसे किसने कह दिया देवयानी कि मैं अभिनय कर रहा था ? अभिनय तो मैंने कभी जीवन में किया ही नहीं।"

देवयानी के चेहरे पर मुस्कराहट खेल रही थी। वह बोली, "अच्छा कच, एक बात बतलाओ।"

"क्या ?" कच ने पूछा।

"तुम यहाँ कब आये ?"

ब्रह्मचारी कच बोला, "आज, अभी, कुछ देर पूर्व।"

"फिर मुझे ऐसा क्यों लगने लगा कि मानो तुम तबसे यहाँ रह रहे

हो जबसे कि मैं यहाँ रह रही हूँ।" देवयानी ने पूछा।

ब्रह्मचारी कच भोजन खाकर अपनी पत्तल एक ओर रखकर बोला, "पता नहीं तुम्हें ऐसा क्यों लग रहा है देवयानी ! सत्य तो यही है जो मैंने कहा, परन्तु अब तुम्हारे कहने से धोखा मुझे भी होने लगा। इतने कम सम्पर्क में हम लोग इतने निकट आ गए, यह बड़े ही आश्चर्य की बात हुई देवयानी।"

देवयानी खड़ी होती हुई बोली, "अब सोने का समय हो गया। रात काफी व्यतीत हो गई है। हम लोगों ने बातों-ही-बातों में पर्याप्त समय निकाल दिया। तुम अब अपनी कुटिया में जाकर विश्राम करो और मैं अपनी कुटिया में जाती हूँ।"

विदा होते समय देवयानी ने ब्रह्मचारी कच को प्रणाम किया।

—४—

दूसरे दिन प्रातःकाल के नित्य कार्यों से निवृत्त होकर देवयानी ब्रह्मचारी कच के पास आई तो कच स्नान इत्यादि से निवृत्त हो चुका था।

देवयानी ने पूछा, "तैयार हो ब्रह्मचारी पिताजी के पास चलने के लिए।"

"तैयार हूँ देवयानी।" खड़े होकर ब्रह्मचारी कच बोला।

देवयानी बोली, "ब्रह्मचारी कच, तुम जानते हो तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"आचार्य शुक्राचार्य के पास।" कच ने कहा।

"नहीं, तुम एक आग के विशाल गोले से टकराने जा रहे हो। परन्तु तुम घबराना नहीं। उस आग के गोले के हृदय में कितनी शीत-

लता है, यह विरले ही जानते हैं। पिताजी के प्रश्नों का जो उत्तर तुम सही समझो, निर्भीकतापूर्वक देना। यदि सही हुआ तो पिताजी तुम्हारी प्रशंसा करेंगे और यदि गलत हुआ तो वह उसमें सुधार कर देंगे।" देवयानी बोली।

इस प्रकार ब्रह्मचारी कच को पूरी तरह सिखा-पढ़ाकर और अपने पिताजी के स्वभाव से उसे पूर्ण परिचित कराकर देवयानी ब्रह्मचारी कच को अपने पिताजी आचार्य शुक्राचार्य के पास ले गई।

ब्रह्मचारी कच ने आगे बढ़कर आचार्य शुक्राचार्य के चरण छुए और सादर प्रणाम किया।

आचार्य शुक्राचार्य बोले, "सामने आसन पर बैठ जाओ।"

ब्रह्मचारी कच सामने आसन पर बैठ गया।

"यहाँ किस लिए आये हो ?" आचार्य ने पूछा।

"मैं आपके पास धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आया हूँ। मैंने समस्त देश का पर्यटन किया है और अनेक विद्वानों तथा आचार्यों से भेंट की, परन्तु ऐसा कोई न मिला जो तीनों नीतियों का सामंजस्य स्थापित करके संजीवनी-शक्ति को संचारित कर सके।"

मुझे एक आचार्य ने बतलाया कि यह विद्या आचार्य शुक्राचार्यजी के अतिरिक्त अन्य किसीके पास नहीं है। यह शिक्षा तुम्हें उन्हींसे प्राप्त हो सकती है।

इसी अभिप्राय को लेकर मैं आपकी सेवा में आया हूँ।"

ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य का मुख-वर्ण लाल हो गया। उनके मन में ब्रह्मचारी कच के प्रति शंकाएँ उत्पन्न हो गईं और उन्होंने क्रोधपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा।

परन्तु ब्रह्मचारी कच पर उनकी इस आकृति का कोई प्रभाव नहीं

हुआ। वह उसी प्रकार उनके चेहरे पर अपनी सरल दृष्टि पसारे मौन बैठा रहा।

देवयानी ने अपने पिता के मुख की यह आकृति देखी तो वह भय-भीत हो उठी। उसके मन में शंका उत्पन्न हुई कि कहीं पिताजी ब्रह्मचारी कच को अपने आश्रम में शिक्षार्थ रहने की आज्ञा न दें। उसका बदन थर-थर काँपने लगा।

आचार्य शुक्राचार्य बोले, "ब्रह्मचारी, तुम धर्मनीति सीखना चाहते हो, समाजनीति सीखना चाहते हो यह सब तो ठीक है एक जिज्ञासु के लिए परन्तु राजनीति क्यों सीखना चाहते हो ?"

ब्रह्मचारी सरल प्रकृति से ही बोला, "धर्म की रक्षा के लिए।"

ब्रह्मचारी का संक्षिप्त उत्तर सुनकर आचार्य शुक्राचार्य का मुख-मंडल खिल उठा। उनके चेहरे पर छाए हुए शंका के भाव लुप्त हो गए और वह प्रसन्न-मुद्रा से बोले, "मैं तुम्हारे उत्तर से बहुत प्रसन्न हुआ ब्रह्मचारी ! राजनीति के बिना धर्म और समाजनीति की सुरक्षा असम्भव हो उठी है, हो नहीं सकेगी भविष्य में। राजनीति बहुत प्रखर रूप धारण करती जा रही है और इस भौतिक संसार में एक दिन राजनीति का ही बोल-बाला होगा। राजनीति अन्य सब नीतियों के सिर पर चढ़कर बोलेगी।"

ब्रह्मचारी कच बोला, "तब क्या आचार्य ! धर्मनीति मुख्य नहीं रहेगी ? क्या धर्मनीति से ही समाज और राजनीति ने जन्म नहीं लिया है ?"

आचार्य शुक्राचार्य ने ब्रह्मचारी कच के प्रश्न को सुनकर आश्चर्य से उसके मुख पर देखा। उसके प्रश्न को सुनकर उन्हें ब्रह्मचारी की तीव्र बुद्धि पर गर्व हुआ और मुग्ध कण्ठ से बोले, "ब्रह्मचारी, तुमने बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न किया। तुम्हारा यह प्रश्न बतलाता है कि तुम

किसी दिन तीनों नीतियों के प्रकांड पण्डित बनोगे। मै आशीर्वाद देता हूँ तुम्हें और भविष्यवाणी करता हूँ कि कि इस भौतिक जगत् में धीरे-धीरे धर्मनीति का सम्मान गिरता जायगा। समाजनीति का अभाव अवश्य रहेगा, परन्तु राजनीति के ही हाथों में कठपुतली के समान खेलना होगा। राजनीति के सम्मुख ये दोनों नीतियाँ फीकी पड़ जायेंगी।"

"तब क्या होगा आचार्य ! क्या इससे मानव का आध्यात्मिक ह्रास नहीं होगा ? क्या इससे मानव का भावना-पक्ष कुण्ठित न हो उठेगा ? क्या इससे मानव-जीवन अविश्वास, शंका, स्वार्थ और भय से पीड़ित नहीं हो उठेगा ?" ब्रह्मचारी कच ने पूछा।

ब्रह्मचारी कच के प्रश्न को सुनकर आचार्य शुक्राचार्य गद्गद हो उठे। उनका मन हुआ कि ब्रह्मचारी कच को उठाकर चूम लें और छाती से लगा लें। चार शब्दों में उसने भविष्य की कितनी सुन्दर परिभाषा प्रस्तुत कर दी !

आचार्य शुक्राचार्य ने खड़े होकर सचमुच ब्रह्मचारी कच को सीने से लगाकर चूम लिया। वह अपने भावातिरेक को रोक न सके और मधुर वाणी में बोले, "बिलकुल यही होने वाला है ब्रह्मचारी ! बिलकुल यही होगा। समय दूर नहीं रहा जब यह सब होने लगेगा। परन्तु यह होगा तभी जब धर्म का पतन होगा और समाज कुसमाज बन जायेगा। धर्म और समाज की सुव्यवस्था हो तो राजनीति की कोई आवश्यकता नहीं और समाज क्या है, वह भी तो धर्म का ही एक अंग है। केवल धर्म-व्यवस्था में विकार न हो तो मानव-मात्र सुख और चैन की वंशी बजा सकता है। परन्तु यह स[illegible]व [illegible]हीं रहा अब। धर्म की मर्यादाएँ मनुष्य को जकड़कर अपना बंदी बनाना चाहता हैं और मनुष्य धर्म को डुगडुगी के समान लेकर चलना चाहता है कि जब मन की मौज हुई, उस डुगडुगी को बजा लिया। इस अव्यवस्था को रोकने के लिए राजनीति का विकास हो रहा है और मुझे दिखलाई दे रहा है कि

इसका महान् विकास होगा । कलयुग तक पहुँचते-पहुँचने तुम देखोगे कि राजनीति के अतिरिक्त संसार में और कुछ रह ही नहीं जायगा । वही राजनीति जिसका प्रयोग आज हम अमृत के समान कर रहे हैं, विष हो जायगी उस समय । इसका क्षेत्र केवल राज्यों तक ही सीमित न रहकर नगरों और ग्रामों तक पहुँच जायगा । पारस्परिक द्वेष परा-काष्ठा पर होंगे, आचार-विचार का कोई ध्यान नहीं होगा, धर्म-कर्म में किसीकी निष्ठा नहीं रहेगी । 'हाय रोटी और हाय कपड़ा' चिल्ला-चिल्ला कर मानव त्रस्त होता हुआ दिखाई देगा । किसीका किसीमें विश्वास नहीं रहेगा । यहाँ तक कि स्त्री और पुरुष के बीच भी राजनीति चलेगी और पिता-पुत्र के बीच भी ।

यह मानव का घोर पतन-काल होगा । मानव-विनाश की यहाँ अन्तिम सीढ़ी होगी । राजनीति के जोम में इसे मानव अपने मस्तिष्क का सर्वोत्तम शिखर मानेगा, परन्तु वह विस्फोट होगा कि एक बार को सब समाप्त हो जायगा और केवल मानव-धर्म शेष रह जायगा ।

फिर दुबारा धर्मनीति का संचालन होगा ब्रह्मचारी कच !"

आचार्य शुक्राचार्य के मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द ब्रह्मचारी कच के हृदय-पटल पर अंकित हो गया । ब्रह्मचारी कच को हार्दिक आत्मसंतोष हुआ ।

देवयानी गुरु और शिष्य की बातें सुनकर मुग्ध हो उठी
की प्रखर बुद्धि का उसे लोहा मानना पड़ा । ब्रह्मचारी आश्रम में बहुत थे, परन्तु यह ब्रह्मचारी अद्वितीय था ।

देवयानी ने मुग्ध-दृष्टि से ब्रह्मचारी के चेहरे पर देखा ।

"आचार्य ने जो ज्ञान-प्रसार किया वह भविष्यवाणी है परन्तु मैं देख रहा हूँ कि धर्म, समाज और राजनीति की प्रगति को देखकर इसके अतिरिक्त और कुछ होना सम्भव नहीं । धर्म का विनाश करने वाली शक्तियाँ एक दिन स्वयं विनाश को प्राप्त होंगी ।

परन्तु आचार्य ! हमें तो विनाश की बात नहीं सोचनी चाहिए। हमें तो निर्माण की बात सोचनी चाहिए।" अकस्मात् ब्रह्मचारी कह उठा।

ब्रह्मचारी की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य ने आशापूर्ण नेत्रों से देखा और स्नेहपूर्वक बोले, "मुझे विश्वास होता जा रहा है कि यह तुम कर सकोगे। हमने विध्वंस की आवश्यकता अनुभव की, सो कर रहे हैं। जड़ मानव को जागरूक करने का हमने अपना यही सिद्धान्त बनाया।

तुम निर्माण करना। हमारे बिस्मार किये हुए खंडहरों पर सांस्कृतिक संसार का निर्माण करना, जिससे विश्व जान सके कि प्रलय के गर्भ में कितना बड़ा निर्माण का अंकुर होता है!

मैं तुम्हें दीक्षा देकर ब्रह्मचारी अपनी संजीवनी विद्या का तुम्हें पुरस्कार दूँगा। मैंने जिस विद्या का विध्वंस के लिए प्रयोग किया है, तुम उसका निर्माण के लिए प्रयोग करना।"

ब्रह्मचारी कच ने खड़े होकर आचार्य शुक्राचार्य के चरणों में अपना मस्तक टिका दिया और शपथ ली कि आचार्य ने जो आदर्श उसके सम्मुख रखा है उसकी पूर्ति के लिए वह अपना तन, मन और जीवन अर्पित कर देगा।

आचार्य शुक्राचार्य ने एक बार फिर कच को छाती से लगाया और अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रकट कीं।

—५—

आचार्य शुक्राचार्य ने ब्रह्मचारी कच को अपने शिष्य-रूप में ग्रहण कर लिया। इससे देवयानी की प्रसन्नता का पारावार न रहा। उसका मन-मयूर नाच उठा। अभी कुछ क्षण पूर्व उसका मन और जीवन, जो अपने

पिताजी की मुखाकृति क्रोधपूर्ण हो जाने पर भय से भर गए थे, अब उल्लास की लहरों में नृत्य करने लगे।

आचार्य शुक्राचार्य की कुटिया से कुछ दूर आकर देवयानी बोली, "ब्रह्मचारी कच ! मुझे लग रहा है कि तुम्हारा ऊपरी रूप जितना आकर्षक और मधुर है, उससे कहीं अधिक विकसित तुम्हारा अन्तर-मानस है। जब तुम पिताजी से बातें कर रहे थे तो तुम्हारे अन्तर-मानस के प्रभाव ने मेरे नेत्र बन्द कर दिए और मैं उसी प्रकार अपने कर्ण-द्वारों से तुम्हारे अन्तर से तादात्म्य स्थापित करती रही।"

ब्रह्मचारी मुस्कराकर बोला, "दोनों में क्या अन्तर देखा तुमने देवयानी ?"

"मुझे कोई अन्तर नहीं मिला ब्रह्मचारी ! मैंने तुम्हारे अंतर और बहिर्जगत् में एक ही रस की धारा प्रवाहित होती हुई पाई। तुम अन्दर और बाहर से समान सुन्दर हो।" देवयानी ने कहा।

ब्रह्मचारी मुस्कराकर बोला, "इस सुन्दर को क्या तुम सर्वदा सुन्दर मानने का संकल्प कर चुकी हो देवयानी ? इसे कभी किसी निर्बलता के कारण असुन्दर तो नहीं कह उठोगी ?"

देवयानी ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर मौन रह गई। फिर सरल दृष्टि से ब्रह्मचारी कच के चेहरे पर देखकर बोली, "सुन्दर सर्वदा सुन्दर ही रहेगा ब्रह्मचारी! और मैं भला सुन्दर को असुन्दर कैसे कह सकूँगी !" कहते-कहते देवयानी का मन तनिक भारी-सा हो उठा।

देवयानी के हृदय में उठने वाले भाव को समझकर ब्रह्मचारी मुस्कराकर बोला, "देवयानी ! कितना भोला बनाया है तुम्हें विधाता ने ! प्रकृति ने अपनी सरल मुस्कान का ढेर, जो इकट्ठा करके तुम्हारे हृदय में भर दिया है, तनिक उसे खोल तो दो।"

और सचमुच देवयानी हँस पड़ी। वर्तमान सौंदर्य की मलय पवन ने झंझावातों के प्रचंड वेग की कल्पना को मस्तिष्क से निकालकर

बाहर फेंक दिया। इस सब-कुछ सुन्दर में आखिर वह व्यर्थ की शंकाओं की कल्पना क्यों करें ? आज इसका आनन्द   कल लें जो होगा, देखा जायगा।

देवयानी का बदन पुलकायमान हो उठा।

तभी शर्मिष्ठा वहाँ आ गई। बोली, "तुम दोनों की कुटियाओं में सिर मारकर आ रही हूँ। मुझे क्या पता था कि तुम लोग इतना सवेरे ही उद्यान-विहार को निकल जाओगे।

क्यों ब्रह्मचारी कच! आज रात्रि को तो आप सो भी नहीं सके होंगे ?"

शर्मिष्ठा की बात सुनकर ब्रह्मचारी देवयानी की ओर मुँह करके बोला, "राज-कन्या शर्मिष्ठा ठीक कह रही है देवयानी! जिस राज्य की राजकुमारी इतनी सुन्दर हो उसमें आकर क्या अतिथि रात्रि को सो सकता है ?"

"बस रहने दो ब्रह्मचारी! मेरा नाम व्यर्थ ही उपहास के लिए तुम्हें मिल गया है। परन्तु मैं आज्ञा देती हूँ कि तुम दोनों मेरे नाम को बीच में रखकर अपना प्रेमालाप आगे बढ़ा सकते हो।" शर्मिष्ठा कटु व्यंग्य के साथ बोली।

देवयानी तिलमिलाकर बोली, "शर्मिष्ठा! देवयानी को बहाने की आवश्यकता नहीं है किसी शुभ कार्य को करने के लिए।"

देवयानी का तिलमिलाना देखकर शर्मिष्ठा खिलखिलाकर हँस पड़ी।

ब्रह्मचारी कच बोला, "देवयानी! मैं फिर कहता हूँ कि बहुत भोली हो तुम! शर्मिष्ठा की चालों को तुम नहीं पहुँच सकतीं। आखिर तुम से इसने कहलवा ही लिया ना, जो यह कहलवाना चाहती थी। परन्तु शर्मिष्ठा सत्य यही है कि तुम्हारे ही अन्दर वह शक्ति है जो किसीकी नींद चुरा

सकती है। देवयानी के वश की यह बात नहीं।

मैं पूछता हूँ तुमसे ही कि नयनों का जो बाँकापन तुम्हारे पास है, वह क्या देवयानी के पास है ? वेणी का जो प्रसार तुम्हारे शीश पर है, वह देवयानी के शीश पर तुम्हें कहीं दिखाई देता है ? तुम्हारे अधरों से जो मिठास चू रहा है, उसकी क्या एक बूँद भी आकर देवयानी के होठों से चिपक गई है ? तुम्हारी नुकीली नासिका के सम्मुख क्या देवयानी की नाक उपहास-मात्र प्रतीत नहीं होती ? तुम्हारे वक्षस्थल का उभार क्या देवों के लिए भी दुर्लभ वस्तु नहीं है ? तम्हारे नितम्ब और तुम्हारी चाल, यह सब कहाँ है देवयानी में ?"

शर्मिष्ठा पर ब्रह्मचारी कच के कहने का जादू-सा होता जा रहा था और देवयानी मुस्करा रही थी।

देवयानी के चेहरे पर मुस्कान देखकर शर्मिष्ठा के हृदय में मानो किसीने चुटकी भरकर कहा, 'पगली कहीं की। तू समझती है कि ब्रह्मचारी तेरे रूप की प्रशंसा कर रहा है। यह उपहास है—उपहास।'

"उपहास !" शर्मिष्ठा के मुख से निकला।

"प्रशंसा !" देवयानी ने गम्भीर आकृति से कहा, "मैं अपनी सहेली शर्मिष्ठा के रूप को सचमुच अपने से सुन्दर मानती हूँ। ये जो शब्द ब्रह्मचारी कच ने इस समय दोहराए हैं, मैंने ही कहे थे इनसे।"

देवयानी एक दम विषय बदलकर बोल उठी, "शर्मिष्ठा ! हम लोग तुम्हें छोड़कर उद्यान-विहार के लिए नहीं गए थे।"

"तब कहाँ गए थे ?" शर्मिष्ठा ने पूछा।

"हम लोग पिताजी के पास गए थे और तम्हें यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि पिताजी ने ब्रह्मचारी कच को दीक्षा देने का निश्चय कर लिया है।

ब्रह्मचारी कच आश्रम में रहेंगे। अब तुम इनकी जितनी भी रातों

की नींद चुराना चाहोगी, चुरा सकोगी।" और फिर मुस्कराकर बोली, "परन्तु तुमने कल यह चोरी की, यह उचित नहीं किया। यह बेचारे थके हुए थे और इन्हें नींद की आवश्यकता थी। तुम ही सोचो, ब्रह्मचारी कच ने क्या यह धारणा नहीं बना ली होगी कि यहाँ की लड़कियाँ इतनी चोर हैं कि पहले ही दिन किसी यात्री के यहाँ आने पर ये उसका कुछ न-कुछ चुरा लेती हैं।"

देवयानी की बात सुनकर तीनों खिलखिलाकर हँस पड़े। उनके मधुर हास्य ने दूर-दूर तक बेल-वितानों के जिन-जिन पक्षियों को भी छुआ, वे सब मधुर हास्य की धारा में बह गए। वृक्ष अँगड़ाई लेकर झूम उठे और लतिकाएँ बल खाकर वृक्षों से लिपट गईं।

देवयानी और शर्मिष्ठा दोनों के बदन में सिहरन आ गई। दोनों का यौवन उभार खा गया। दोनों के नेत्र चमक उठे। दोनों ने एक साथ अँगड़ाई ली और फिर दोनों ही एक-दूसरी की बाहुओं में आबद्ध होकर ब्रह्मचारी की ओर देखने लगीं।

ब्रह्मचारी कच इन्हें देखकर मुस्करा रहा था। प्रकृति के अनुपम सौंदर्य की छाया पर इन लड़कियों का मधुर उल्लास बिखरा देखकर उसने विधाता की अनुपम कला की सुन्दरतम कल्पना की। उसका मन मुग्ध हो उठा।

तीनों यहाँ से धीरे-धीरे आगे बढ़ गए।

—६—

आचार्य शुक्राचार्य ने शुभ मुहूर्त्त में ब्रह्मचारी कच को दीक्षा दी। दीक्षा-समारोह आश्रम में बड़े आमोद-प्रमोद के साथ मनाया गया।

ब्रह्मचारी कच ने पच्चीस वर्ष की विद्या का अध्ययन पाँच वर्ष में

पूर्ण कर लिया।

ये पाँच वर्ष आमोद-प्रमोद में पलक मारते निकल गए। ब्रह्मचारी कच धर्म, समाज और राजनीति का प्रकांड पण्डित आचार्य शुक्राचार्य द्वारा घोषित किया गया और उसे आचार्य-पद से विभूषित किया।

एक विराट आयोजन में यह पद आचार्य शुक्राचार्य ने ब्रह्मचारी कच को प्रदान किया।

ब्रह्मचारी कच ने आचार्य शुक्राचार्य की चरण-धूलि लेकर अपने मस्तक से लगाई और उच्च स्वर में प्रतिज्ञा की कि वह आचार्य शुक्राचार्य के ध्वस्त खंडहरों को एक बार फिर से आबाद करेगा, उनके प्रकोप से दहकते हुए दिशाखंडों को शीतलता प्रदान करेगा और सुख तथा शांति के साथ धर्म-व्यवस्था के आँचल में लहराते हुए सांस्कृतिक समाज का निर्माण करेगा।

आचार्य शुक्राचार्य ने ब्रह्मचारी कच के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और अपने आश्रम से अन्तिम विदा दी।

ब्रह्मचारी कच के प्रस्थान का समाचार चारों ओर फैल गया। वह आश्रम में पाँच वर्ष रहकर वहाँ के हर प्राणी के जीवन में इतना घुल-मिल गया था कि उन्हें कच के विछोह का समाचार पाकर ऐसा लग रहा था जैसे उनका कुछ उनसे छिन रहा है। उन सबका मन व्याकुल हो उठा। आश्रम की गउएँ रँभा-रँभाकर ब्रह्मचारी कच के पास आ खड़ी हुईं। उन्हें वह नित्य-नियम से सानी किया करता था। चिड़े-चिड़ियाँ वृक्षों की डालियों पर बैठे अश्रु-वर्षा रहे थे। उन्हें कच चुग्गा खिलाया करता था। आश्रम के ब्रह्मचारी उसे घेरे खड़े थे, उन्हें वह पाठ पढ़ाया करता था।

तभी शर्मिष्ठा सामने आकर बोली, "ब्रह्मचारी कच! यदि तुम्हें इस आश्रम को एक दिन इस प्रकार शोक-सागर में डुबाकर जाना

था तो तुम यहाँ आये ही क्यों थे ? न आते तो आज यह कष्ट तो न होता हमें ।"

ब्रह्मचारी मुस्कराकर बोला, "शर्मिष्ठा ! इस एक दिन के कष्ट ने ही तो मुझे पाँच वर्ष इस आश्रम-वासियों की सेवा करने का सुअवसर प्रदान किया। क्या मेरी सेवा से कुछ सुख नहीं मिला तुम्हें ?"

"मिला क्यों नहीं ब्रह्मचारी ! परन्तु उस सुख को तो तुम छीने लिये जा रहे हो इस समय ।"

ब्रह्मचारी कच मुस्कराकर बोला, "तो तुम अपने सुख के लिए व्याकुल हो उठी हो, ब्रह्मचारी कच के लिए नहीं शर्मिष्ठा ! जो सुख तुम खोज रही हो वह मेरे पास कहाँ ?"

शर्मिष्ठा तिलमिला उठी और तिलमिलाकर कर्कश वाणी में बोली, "वह सुख मेरे लिए सम्भव नहीं है, यह मैं जानती थी। और यह भी जानती थी कि तुम्हारा यह रूप मुझ पर व्यर्थ अपने माया-जाल का प्रसार कर रहा है। मैं जानती थी कि तुम्हारा हृदय निर्मल नहीं, स्वच्छ नहीं, उसमें धोखा और प्रपंच भरा है। चोर मैं नहीं निकली ब्रह्मचारी ! मेरे चोर तुम हो ।"

ब्रह्मचारी कच मुस्कराकर बोला, "शान्त हो शर्मिष्ठा ! अपने यौवन के प्रवाह को सीमा में बाँधकर चलने का प्रयास करो। कहीं ऐसा न हो कि वह बहता-बहता मरु-भूमि में पहुँचकर सूख जाय और तुम्हारे जीवन-भर के संचित रस की गगरी ढुलक जाय।

तुम्हारे हृदय में प्रेम होता तो तुम्हारे नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई होती और जो शब्द तुमने उच्चारण किए वे कण्ठ से बाहर निकल ही न पाते ।"

शर्मिष्ठा ने इसे अपना अपमान समझा और वह बिना एक शब्द भी मुख से उच्चारण किए वहाँ से चली गई ।

ब्रह्मचारी कच विदा होना चाहता था। उसके नेत्र किसीको खोज रहे थे और जिसे वह खोज रहे थे वह वहाँ नहीं था। ब्रह्मचारी ने अपने

आस-पास एकत्रित जनों को अंतिम नमस्कार किया और उनसे अंतिम विदा ली।

सब लोग चले गए। ब्रह्मचारी कच अकेला खड़ा रह गया।

ब्रह्मचारी कच आज पाँच वर्ष में प्रथम बार देवयानी की कुटिया के द्वार पर गया। देवयानी ही ब्रह्मचारी कच की कुटिया पर आती थी, ब्रह्मचारी कभी वहाँ नहीं जाता था।

ब्रह्मचारी कच ने कुटिया के द्वार पर खड़े होकर पुकारा, "देवयानी !"

देवयानी चटाई से उठ बैठी। उसने जल्दी से अपने नेत्र पोंछे, परन्तु ठीक से पुँछ नहीं सके। वे आँसुओं में सने रहे। वह हड़वड़ाकर कुटिया के द्वार पर आई तो देखा ब्रह्मचारी कच खड़ा था।

देवयानी अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों को ब्रह्मचारी कच की सरल मुखाकृति पर पसारकर धीरे-से बोली, "ब्रह्मचारी कच, क्या तुम सचमुच यहाँ से चले जाओगे ? क्या तुम सचमुच मुझे इस प्रकार निराश्रित छोड़कर जा सकोगे ? जिस दिन से तुम यहाँ आये हो और मैंने तुम्हारे दर्शन किए हैं, आराध्य-देव मानकर तुम्हारी पूजा की है। क्या यह सब वृथा किया है मैंने ? क्या यह सब झूठ किया है मैंने ? क्या मैंने कोई भूल की है ?"

ब्रह्मचारी कच प्रस्तर-शिला के समान जड़ हो गए। उनका कण्ठ रुद्ध हो गया। उनकी वाणी मौन हो गई।

फिर कुछ अपने को सम्भालकर कच बोला, "देवयानी ! हम दोनों पाँच वर्ष तक साथ-साथ रहे। विद्या-अध्ययन के साथ-साथ मैं तुम्हारा भी अध्ययन करता रहा, परन्तु तुम एक ऐसे प्रेम-पाश में जकड़ गईं कि मेरा अध्ययन नहीं कर पाईं।

आज मैं तुम्हारा अध्ययन करके विदा हो रहा हूँ और तुम्हें अवसर दे रहा हूँ कि तुम भी मेरा सही अध्ययन कर सको। मुझे विश्वास है कि जो अध्ययन तुम पाँच वर्ष मेरे साथ रहकर नहीं कर सकीं, वह मुझसे अलग होकर बहुत कम समय में कर सकोगी। तुम मेरे लक्ष्य की प्राप्ति में

आधार-शिला के समान हो देवयानी ! सोचो, यदि तुम ही हिल उठोगी तो मेरे लक्ष्य और मेरे संकल्प का क्या होगा ?"

देवयानी अवाक् ब्रह्मचारी कच के मुख-मंडल पर निहारती रही। उसने देखा कि उसे ब्रह्मचारी कच का रूप आज से सुन्दर पहले कभी नहीं लगा। कितना भव्य था वह रूप ! एकदम अविचल। एकदम सरल। विकार-विहीन।

ब्रह्मचारी कच बोला, "यहीं खड़ी रहोगी देवयानी ! क्या उस स्थान तक भी छोड़ने नहीं चलोगी कच को जहाँ से उसे तुम पकड़कर इस आश्रम में लाई थीं।"

देवयानी के पैर आप-से-आप आगे बढ़ गए। दोनों धीरे-धीरे चलते-चलते उद्यान में उसी आम्र की छाया में आकर खड़े हो गए जहाँ एक दिन ब्रह्मचारी अचेत होकर गिर पड़ा था और देवयानी ने उसके मुख पर जल छिड़ककर उसकी अचेतनता दूर की थी।

दोनों घास पर बैठ गए। देवयानी वोली, "ब्रचह्मारी कच ! तो मैं अब यही समझूँ कि तुमने जाने का पूर्ण संकल्प कर लिया। जो डोर तुमने अपने हाथ से बाँधी उसे तुम स्वयं तोड़ देना चाहते हो। तुम समर्थ हो। तोड़ सकते हो उसे।" कहते-कहते उसके नेत्रों में जल छलछला आया। आँसुओं की बूँदें टपाटप भूमि पर गिरने लगीं।

ब्रह्मचारी कच ने बड़ी कठिनाई से द्रवित होते हुए अपने को रोका। वह पाषाण नहीं बन सकता था देवयानी के सम्मुख। देवयानी का सरल स्वाभाविक कष्ट उसके हृदय को विदीर्ण किए दे रहा था।

परन्तु उसके सम्मुख उसके लक्ष्य की एक विशाल दीवार खड़ी थी। वह अपने पिताजी के सम्मुख और आर्यजनों की भरी सभा के सम्मुख प्रण करके आया था कि ब्रह्मचारी बनकर जायेगा, ब्रह्मचारी-रूप में संजीवनी शान्ति को प्राप्त करेगा और ब्रह्मचारी स्वरूप में ही लौटेगा। उसके सम्मुख आर्यों के उन खंडहरों को फिर से आबाद करने का महान् संकल्प था, प्रतिज्ञा वह शुक्राचार्यजी के सम्मुख कर चुका था। यह सब क्या

देवयानी के साथ सम्भव था और फिर देवयानी उसकी गुरु-बहन थी। उसके साथ विवाह कैसा ? यह धर्म और समाज दोनों नीतियों के प्रतिकूल था।

देवयानी आशा-भरी दृष्टि से ब्रह्मचारी के चेहरे पर देखकर बोली, "ब्रह्मचारी कच ! क्या यह किसी प्रकार सम्भव नहीं कि मेरा तुम्हारा··· ·········?"

इससे आगे के शब्द ब्रह्मचारी कच ने नहीं सुने। उसने अपने दोनों हाथों की दो उँगलियाँ अपने दोनों कानों में देकर कहा, "बहन देवयानी ! महा पाप ! आचार्य की पुत्री मेरी बहन है। तुम्हारे रूप की प्रशंसा मैंने जब-जब भी की है तो विधाता की कारीगरी पर मेरा मन मुग्ध हो उठा है। मैं अपनी बहन के लिए उपयुक्त वर खोजूँगा और खोजूँगा ही नहीं देवयानी ! वह मेरी दृष्टि में है।"

ब्रह्मचारी कच की बात सुनकर देवयानी अचेत होकर हरी घास पर एक ओर को ढुलक जाती, यदि कच ने उसे अपने हाथों का सहारा देकर स्नेह से अपनी गोद में न लिटा लिया होता।

थोड़ी देर में देवयानी की आँखें खुलीं तो उसने अपने को ब्रह्मचारी कच की गोद में पड़े पाया। वह विश्वास नहीं कर सकी। उसने नेत्र बन्द कर लिये और फिर थोड़ी देर पश्चात् आँखें मलकर बैठी हो गई।

देवयानी बोली, "ब्रह्मचारी कच ! देख रहे हो इस आम्र-वृक्ष को। इसी आम्र-वृक्ष के नीचे एक दिन मैंने तुम्हें अचेतन से चेतन किया था और आज उसीके नीचे तुम मुझे चेतन से अचेतन करके जा रहे हो।

तुम्हारी इच्छा। मैं तुम पर बल-प्रयोग नहीं कर सकती ब्रह्मचारी कच ! और प्रेम के मार्ग में बल-प्रयोग का अर्थ भी क्या है ?"

ब्रह्मचारी कच मुस्करा उठा देवयानी की बात सुनकर। वह सरल वाणी में बोला, "बहन देवयानी ! तुम्हारे भाई कच ने आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में रहकर जिस समाज और धर्मनीति का अध्ययन करके आचार्य-पद प्राप्त किया है, क्या तुम चाहती हो कि वह उसीकी सीमा

में उसे खंड-खंड कर डाले ? क्या तुम चाहती हो कि मैं इस पुण्य-भूमि को कलंकित करके अपने और तुम्हारे चेहरों पर सर्वदा के लिए कालिख पोत दूँ।

कच प्राण दे सकता है, यह नहीं कर सकता।

भावनाओं के कगार से हटकर विचार के धरातल पर आओ देवयानी ! तुम्हारे चरित्र में गिरावट क्यों ? मैं तो उसमें भारतीय गौरव के प्रतीक की झाकी देख रहा हूँ। क्या मेरी आँखें धोखा दे रही हैं मुझे ? परन्तु मैं इसे मानने को उद्यत नहीं हूँ देवयानी ! मैं अपने मस्तिष्क पर अविश्वास नहीं कर सकता और मेरे मस्तिष्क ने तुम्हारा गम्भीर अध्ययन किया है। मैं तुम्हें एक विशाल सम्राज्ञी की सामग्री के रूप में देखना चाहता हूँ।

तुम्हारा भाई कच तुम्हारे समक्ष खड़ा होकर अपनी दो अमूल्य वस्तुएँ तुम्हारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। उनमें से जो तुम्हें पसन्द आये, चुन लो।"

देवयानी ने गम्भीर नेत्रों से ब्रह्मचारी कच की ओर देखा और सरल वाणी में पूछा, "वे दोनों वस्तुएँ क्या हैं, ब्रह्मचारी कच ?"

"एक तुम्हारे भाई का बलिदान और दूसरा तुम्हारे भाई का विशुद्ध सात्विक स्नेह।" कच ने गम्भीर वाणी में कहा।

देवयानी सिहर उठी। वह भयभीत होकर ब्रह्मचारी कच के चरणों पर गिर पड़ी।

ब्रह्मचारी कच ने देवयानी को सस्नेह उठाकर अपनी भुजाओं में भर-कर कहा, "बहन देवयानी ! तुम्हारे सरल प्रेम को अपने हृदय-मंदिर में सर्वदा के लिए सुरक्षित रखने को आज प्रण करता हूँ कि मैं आदित्य ब्रह्मचारी रहूँगा। एक बहन के प्रेम के अतिरिक्त वासनापूर्ण प्रेम कभी इस हृदय में प्रवेश नहीं कर सकेगा।

अपने भाई कच को प्रसन्न-मुद्रा से विदा करो और शुभ कामना करो

कि जिस महान् लक्ष्य को लेकर वह जा रहा है, उसमें सफल हो।"

देवयानी की श्रद्धा-भरी दृष्टि ब्रह्मचारी कच के मुख पर पड़ी। वह देखकर स्तब्ध रह गई। ऐसे अलौकिक तेज के उसने पहले कभी दर्शन नहीं किए थे। वह ठगी-सी रह गई।

ब्रह्मचारी कच ने आगे बढ़कर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और बोला, "तो मैं अब समझूं कि देवयानी बहन ने मुझे कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होने की आज्ञा प्रदान कर दी ?"

देवयानी धीरे-धीरे बोली, "ब्रह्मचारी कच, जिसे मैं प्रेम कहती थी, उसे तुमने मार डाला आचार्य कच ! उसकी तुमने हत्या कर दी।

उसके शव पर खड़ी होकर आचार्य कच की बहन देवयानी अपने भाई को कर्त्तव्य-पथ पर आगे बढ़ने की सहर्ष अनुमति देती है।"

ब्रह्मचारी का मस्तिष्क देवयानी की गम्भीर वाणी सुनकर हिल उठा। उसने देवयानी के नेत्रों में झाँककर देखा तो कुछ समझ नहीं सका वह। उसके हृदय में अथाह पीड़ा उत्पन्न हो गई थी।

वह बोला, "देवयानी ! तुमने विदा तो दी अपने भाई को परन्तु चिर पीड़ा भी प्रदान कर दी। इस पीड़ा को लेकर विदा ले रहा हूँ देवयानी !"

देवयानी रो पड़ी। कितनी ही देर से बलात् रोके हुए आँसू छलक-कर बरस पड़े। उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से ब्रह्मचारी कच को विदा दी।

ब्रह्मचारी कच चल पड़ा। उसके पैर भारी हो उठे थे। बड़ी कठि-नाई से वह आगे बढ़ रहा था।

कुछ दूर जाकर उसने घूमकर देखा तो पाया कि देवयानी स्थिर भाव से पाषाण-शिला के समान अविचल उसी स्थान पर खड़ी थी।

कच ने अपना हाथ आकाश की ओर उठाया। उसे देखकर देवयानी ने भी अपना हाथ ऊपर उठा दिया।

कच फिर अपनी राह पर चल दिया। उसके समक्ष वह पर्वत-माला थी जिस पर खड़ा होकर उसने प्रथम बार इस नगरी के दर्शन किए थे।

कच ने एक बार उस पर्वत-माला की चोटी पर पहुँच कर फिर पीछे घूमकर देखा तो पाया कि देवयानी अभी भी वहीं पर खड़ी थी।

कच का मन अधीर हो उठा। उसका मन असीम पीड़ा से भरा हुआ था। उसने देवयानी के हृदय को जो ठेस पहुँचायी थी उसका उसके हृदय पर गहरा आघात था, परन्तु कुछ कर नहीं सकता था, वह वचनबद्ध था।

कच ने एक क्षण के लिए नेत्र बन्द कर लिये और फिर घूमकर धीरे-धीरे पर्वत-माला से नीचे की ओर उतर गया।

अब देवयानी को वह नहीं देख सकता था। उसके रूप की मनोरम कांति को हृदय-कक्ष में भरकर वह तीव्र गति से अपने मार्ग पर चल पड़ा।

—७—

ब्रह्मचारी कच ययाति के राज्य में पहुँचकर एक चौकी पर पहुँचा तो वहाँ के सरदार ने तुरन्त एक तीव्र चाल के घोड़े पर अपने दूत को सूचना लेकर महाराज ययाति के पास भेज दिया।

यहीं पर ब्रह्मचारी कच को ययाति के पिता का स्वर्गवास होने और ययाति के सिंहासनारूढ़ होने की सूचना मिली।

ब्रह्मचारी कच के सम्मान में आर्य-सरदार ने अपनी नगरी में एक महान् भोज का आयोजन किया।

दूसरे दिन ब्रह्मचारी कच ने विदा लेने का समाचार सरदार के पास भेजा तो सरदार हाथ जोड़कर बोला, "महाराज ययाति की मुझे आज्ञा प्राप्त हो चुकी है कि आप जब यहाँ पधारें तो आपको समुचित सम्मान के साथ यहाँ पर उस समय तक ठहराया जाय जब तक राजधानी में आपके स्वागत का पूर्ण प्रबन्ध न हो जाय और राजधानी की सवारी

आपको लेने के लिए न आ जाय।'

आप एक-दो दिन यहीं विश्राम करें। मेरे विचार से, सूचना पाते ही स्वयं महाराज ययाति आपको अपने साथ लिवा ले जाने के लिए पधारेंगे।

इस बहाने से महाराज भी आकर मेरी इस छोटी-सी नगरी को पवित्र कर सकेंगे। मेरा अहोभाग्य है कि मुझे आपकी सेवा करने का शुभ अवसर मिला।"

आचार्य कच इतना लम्बा मार्ग तै करके थक चुके थे। उन्होंने सरदार की बात मान ली और वहीं पर ठहर गए।

महाराज ययाति के पास आचार्य कच के राज्य में प्रवेश करने की सूचना पहुँची तो उन्होंने राज्य का सब काम-काज छोड़ दिया और मंत्रियों को आज्ञा दी कि नगर को सजाएँ।

महाराज ययाति ने एक रथ आचार्य बृहस्पति के पास भी उन्हें लाने के लिए भेज दिया।

यहाँ का सब प्रबन्ध ठीक करके महाराज ययाति ने अपना रथ जुड़वाया और स्वयं आचार्य कच के स्वागत के लिए प्रस्थान किया।

कई दिन की यात्रा के पश्चात् महाराज ययाति आचार्य कच के पास पहुँचे और कौली भरकर अपने मित्र से भेंट की। इतने दिन की बिछुड़ी हुई दो आत्माओं का मिलन हुआ।

आचार्य कच से बातें करते-करते महाराज ययाति इधर-उधर कुछ देख रहे थे।

उनकी दृष्टि की व्यग्रता को पहचानकर आचार्य कच ने पूछा, "इधर-उधर क्या खोज रहे हो मित्र ?"

"मैं देख रहा हूँ कि तुम अकेले ही हो।"

"अकेला ही तो गया था, मैं फिर दुकेला होकर कैसे लौटता ! पिताजी के सम्मुख की गई प्रतिज्ञा क्या तुम्हें विस्मरण हो गई ?" कच ने कहा।

"परन्तु देवयानी··· ·······।"

"देवयानी······।" गम्भीर श्वास लेकर ब्रह्मचारी कच ने कहा, "उसकी भावनाओं को कुचलकर ही मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सका हूँ ययाति ! उस बोझ से अभी तक मेरा हृदय और मस्तिष्क दबे हुए हैं।"

"मैं समझा !"महाराज ययाति ने गम्भीरतापूर्वक कहा। "आचार्य कच ! आपने आर्य-राष्ट्र के लिए जो त्याग किया है, उसके लिए ययाति सम्पूर्ण राष्ट्र की ओर से आप और देवयानी दोनों का कृतज्ञ है।"

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "मैंने उस पुष्प को अपने हाथ से मसल दिया ययाति ! बहुत निष्ठुर हो गया मैं। कर्त्तव्य मनुष्य को निष्ठुर बना देता है।। लौकिक समाज और धर्म के बन्धनों पर मैंने अलौकिक रूप को ठुकरा दिया।

इसीलिए बहुत बड़ा प्रायश्चित्त भी किया है ययाति !"

"प्रायश्चित्त !" आश्चर्यचकित होकर महाराज ययाति ने कहा।

"हाँ प्रायश्चित्त। इसके अतिरिक्त और मैं कर ही क्या सकता था। मैंने देवयानी को गुरु-बहन के रूप में ग्रहण करके प्रमाण-स्वरूप आदित्य ब्रह्मचारी रहने का प्रायश्चित्त किया है। तभी मेरे उद्विग्न मन को तनिक शांति मिल सकी। यह न करता तो मैं देवयानी से मुक्त नहीं हो सकता था।" आचार्य कच बोले।

महाराज ययाति आचार्य कच का आर्य-जाति के लिए किए गए त्याग को देखकर गद्गद हो उठे। वह हाथ जोड़कर बोले, "आचार्य कच ! आर्य-जगत् आपके इस त्याग को कभी विस्मरण नहीं कर सकेगा। आपने राष्ट्र-प्रेम की वेदी पर अपना जीवन न्योछावर कर दिया। आपका यह त्याग जब तक यह सृष्टि रहेगी, सर्वदा सम्मान की दृष्टि से देखा जायगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज ययाति ने आचार्य कच को सादर अपने रथ पर बिठाया और राजधानी की ओर प्रस्थान किया।

रथ राजधानी से बाहर देव-मंदिर में रोक दिया गया और वहीं पर आचार्य कच को ससम्मान उतारा गया। राज्य के सम्मानित मंत्री और प्रतिष्ठित जन वहीं पर पधारे हुए थे।

यहीं पर पिता बृहस्पति से आचार्य कच की भेट हुई। पिता-पुत्र बहुत देर तक एक-दूसरे की बाहुओं में आबद्ध खड़े रहे और प्रेमाश्रु ढलुकाते रहे।

अन्त में बृहस्पतिजी मुग्ध होकर बोले, "बेटा कच ! मुझे तुमसे यही आशा थी। मेरे पास तुम्हारे देवयानी के प्रेम में लिप्त हो जाने की सूचनाएँ आईं परन्तु मैंने किसी पर विश्वास नहीं किया। मुझे पूर्ण विश्वास था कि बृहस्पति के पुत्र पर देवयानी तो क्या स्वयं रति भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। वासना उसके हृदय को नहीं वेध सकती। कच को कोई शक्ति कर्त्तव्य-पथ से च्युत नहीं कर सकती।"

आचार्य कच ने श्रद्धापूर्वक पिताजी के चरण छुए और उपस्थित जनों को सादर नमस्कार किया।

महाराज ययाति के सुप्रबन्ध में देव-मंदिर से ही आचार्य कच को रथ में बिठाकर एक जलूस निकाला गया और वह सीधा राज-भवन तक पहुँचा।

सारा नगर पुष्पमालाओं और पताकाओं से सजा था। रंग-बिरंगी बंदनवारें बँधी थीं और भाँति-भाँति की रोशनी का प्रबन्ध था। सारी नगरी देदीप्यमान हो उठी।

आचार्य कच का रथ इस शोभा के बीच से जा रहा था, परन्तु उन्हें यह सब नीरस-सा प्रतीत हो रहा था। उन्हें लग रहा था कि मानो इस में कोई भारी कमी रह गई थी।

निराश होकर वह लम्बा श्वास खींचकर मौन रह गए।

महाराज ययाति आचार्य कच की इस दशा का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर रहे थे।

राज-भवन के पास जाकर जलूस समाप्त हो गया और संध्या को

एक विराट सभा का आयोजन हुआ। सभा के सभापति का आसन आचार्य वृहस्पति ने ग्रहण किया।

आचार्य वृहस्पति बोले, "आर्य-जनो ! आपको यह सूचना पाकर हर्ष होगा कि ब्रह्मचारी कच, जिसे हमने आज से पाँच वर्ष पूर्व अग्नि-कुंड की भेंट किया था, वह उसमें से तपकर कुँदन के रूप में आपके समक्ष दमदमा रहा है।

आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में पाँच वर्ष रहकर इस मेधावी युवक ने पच्चीस वर्ष की शिक्षा पाँच वर्ष में प्राप्त की। इस समय आचार्य कच धर्म, समाज और राजनीति के प्रकाँड पंडित के रूप में आपके समक्ष बैठा है। मैं अपना आचार्य-पद सहर्ष अपने पुत्र कच को प्रदान करता हूँ।"

इतना कहकर वृहस्पतिजी ने आचार्य कच का तिलक किया और उन्हें राज्याचार्य घोषित किया गया।

सभा में हर्षध्वनि के साथ करतल ध्वनि हुई और वाद्यों तथा संगीत-स्वरों से चारों दिशाएँ गूँज उठीं। समस्त वातावरण स्वरमय हो गया। नृत्य का सुन्दर आयोजन हुआ।

परन्तु आचार्य कच मानो प्रस्तर-शिला के समान उस सबके मध्य बैठे थे। वह कुछ सुन नहीं रहे थे, कुछ देख नहीं रहे थे।

वृहस्पति को गर्व था अपने पुत्र के इस निर्लिप्त तपस्वी जीवन पर। वह मन-ही-मन आचार्य कच की गम्भीर मुखाकृति देखकर प्रसन्न हो रहे थे।

आचार्य-पद का समस्त भार आचार्य कच को सँभालकर दूसरे दिन वृहस्पतिजी ने विदा ली।

आचार्य कच का मन महाराज ययाति के राज-महल में रहकर दो-तीन दिन में ही छटपटाने लगा। वह वहाँ नहीं रह सके। उन्होंने सोचा कि यहाँ यदि आचार्य शुक्राचार्य-जैसा आश्रम बनाया जाय और वह उसमें जाकर रहें तो सम्भव है आत्मा को कुछ शांति मिल सके। उनका

मन देवयानी की ओर से बहुत उद्विग्न था। वह सोच नहीं पा रहे थे कि उस कोमल पुष्प के हृदय की उसके निर्दयतापूर्वक ठुकरा देने के पश्चात् क्या दशा हुई होगी !

संध्या को जब महाराज ययाति राज-सभा से लौटकर आचार्य कच के पास पहुँचे तो आचार्य कच ने आश्रम के निर्माण के विषय में उनसे कहा।

महाराज ययाति सहर्ष बोले, "आचार्य कच ! कल प्रातःकाल से ही आश्रम के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो जायगा।"

आचार्य कच ने आचार्य-पद स्वीकार करते ही अपना आसन सँभाल लिया। उन्होंने राज्य की व्यवस्था को एक दम बदल डाला। राज्य-व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। सैन्य-संचालन की सेनापतियों को नवीन नीति के अनुसार शिक्षा दी और उसके सिद्धान्तों का फेर-बदल भी उन्हें समझाया।

राज्य के शासन को आचार्य कच ने नया रूप दे-दिया और उसीके अनुरूप समाजनीति तथा धर्मनीति में भी परिवर्तन किए।

देशभर के आर्य-राजाओं की एक विशाल सभा का आयोजन किया और उन सबके संगठित स्वरूप का निर्माण करके उसे नये उत्साह और उमंग की प्रेरणा दी।

इस परिवर्तन के फलस्वरूप महाराज ययाति की शक्ति देश-व्यापी हो गई। आर्यों के छोटे-बड़े राजा सब उन्हें अपना नेता मानने लगे और महाराज ययाति ने दिग्विजय के लिए प्रस्थान करने में विलम्ब नहीं किया।

महाराज ययाति के सम्मुख जिस किसी अनार्य राजा ने भी सिर उठाया उसे ही ययाति ने कुचल दिया। फलस्वरूप शत्रुओं की आक्रमणकारी प्रवृत्तियाँ समूल नष्ट हो गईं और आर्य-राज्यों पर आक्रमण करके लूट-मार करने का उनका साहस जाता रहा।

कच के आचार्यत्व में आर्य-राजाओं ने चैन की श्वास ली। इधर कितने ही वर्षों से उनके राज्य बराबर उजड़ते चले जा रहे थे। अनार्यों के निरन्तर आक्रमणों ने उनके राज्यों की समृद्धि को नष्ट कर दिया था। उनके धन-प्राण की रक्षा का कोई सुप्रबन्ध नहीं था। हर युद्ध में उनकी पराजय होती थी। परन्तु इधर जब से आचार्य कच की नवीन राजनीति के अंतर्गत उन्होंने अपनी-अपनी शक्ति का संचालन किया, तो उन्हें हर जगह सफलता प्राप्त हुई। जहाँ भी वे गए, उनकी पताका फहराई।

कुछ दिन में आचार्य कच का आश्रम बनकर तय्यार हो गया। आश्रम का निर्माण ठीक आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम के ढंग पर किया गया था। महाराज ययाति ने आचार्य कच की कल्पना के अनुरूप ही इसकी व्यवस्था की थी।

आज संध्या को आश्रम की सब व्यवस्था ठीक हो जाने पर आचार्य कच आश्रम में पहुँचे। सर्वप्रथम वह उसके उद्यान की अमराइयों के बीच से निकलकर जलाशय के पास पहुँचे और उसमें खिले नीले कमलों को देखा।

फिर वहाँ से चलकर वह आश्रम की अतिथिशाला में आये। उसके आस-पास के बेल-वितानों को देखा। दूर सामने बहते जल-प्रपात पर दृष्टि गई, वह उधर को ही चल पड़े। बहुत सुन्दर बना था।

एक-एक स्थान आचार्य कचने आश्रम में घूम-घूमकर देखा और अंत में घूमकर फिर वैसी ही बनी अतिथिशाला की कुटिया में आकर खड़े हो गए जैसी में वह आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में रहा करते थे।

उनकी दृष्टि दूर-दूर तक फैले बेल-वितानों के बीच से होकर उद्यान की अमराइयों तक चली गई, परन्तु उन्हें लग रहा था कि मानो वह कुछ देख ही नहीं रहे। उन्हें लगा कि मानो वह समस्त आश्रम एक नीरस स्थान था। उन्होंने आचार्य शुक्राचार्य का भी आश्रम देखा था। वहाँ कितनी संरसता थी, कितना मिठास था! वहाँ का वायु-

मंडल हर समय स्वरमय रहता था। वहाँ के पशु-पक्षी हर समय संगीत का स्वर अलापते रहते थे।

आचार्य कच को यह सब फीका-फीका-सा लग रहा था। उन्होंने स्पष्ट देखा और अनुभव किया कि जो सरस रस की धारा वहाँ निरंतर प्रवाहित होती रहती थी, उसका यहाँ नितान्त अभाव था।

उन्हें लगा कि यह आश्रम आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम का शवमात्र है। इसमें प्राणों का अभाव है। जीवन-संचारिणी शक्ति यहाँ लेश-मात्र भी नहीं।

तभी उन्होंने एक विचित्र चमत्कार के साथ देखा कि सब वृक्ष फूल उठे। सब दिशाएँ मुस्कराने लगीं। सब पुष्पों से सुगन्धि फूट पड़ी। जलप्रपात तीव्र गति से बह चले और मन्द समीरण के झोंके प्यार के साथ बह निकले।

आचार्य कच को आश्चर्य हुआ यह देखकर। वह खड़े होकर तुरन्त कुटिया से बाहर आ गए और चारों ओर आँखें पसारकर देखा। उन्होंने देखा कि सामने प्रपात के पास वाले वेलों के झुरमुट को चीरकर देवयानी मुस्कराती चली आ रही थी।

देवयानी उनके निकट आ कर बोली, "मैं नहीं थी ना यहाँ आचार्य कच! इसीलिए तो तुम्हें यह सब सूना-सूना और फीका-फीका-सा लग रहा था। मेरे आते ही देख लो तुम्हारा आश्रम कैसा मुस्करा उठा। बेलों को देखो, कैसे प्रेम के साथ अपने साथी वृक्षों के गलों में बाँहें डालकर झूम उठी हैं! पक्षी कलरव नाद कर उठे और पुष्प महँकने लगे।

अब यह सब तुम्हें भला प्रतीत होगा। तुम्हारा मुरझाया हुआ चेहरा भी खिल उठेगा। तुम्हारा बुझा हुआ हृदय का दीपक भी फिर से जल उठेगा और जो यह चारों ओर तुम्हें अंधकार-ही-अंधकार दिखाई दे रहा है, यह सब प्रकाश में बदल जायगा।"

यह कहकर देवयानी वहीं पर खड़ी हो गई और मुस्कराकर बोली,

"तुम मौन क्यों हो आचार्य कच ?"

देवयानी को देखकर आचार्य कच का हृदय सचमुच तरंगित हो उठा। उन्हें लगा कि उनके जीवन से जो उल्लास निकल गया था वह उसमें फिर आ कर भर गया। उन्हें अपने बदन में फिर नई स्फूर्ति दिखाई दी। वह अनायास ही देवयानी की ओर बढ़ चले और हँसकर बोले, "क्या तुम सचमुच चली आईं देवयानी ? तुमने अच्छा ही किया जो चली आईं। तुम्हारे बिना मेरा यहाँ एक क्षण के लिए भी मन नहीं लग रहा था।"

आचार्य कच देवयानी की ओर बढ़े तो देवयानी पीछे को हटने लगी। आचार्य कच ने और पग बढ़ाये तो देवयानी और भी पीछे हट गई।

आचार्य कच रुककर बोले, "मेरे पास आओ देवयानी ! तुम पीछे को क्यों हटती जा रही हो ? ऐसा तो तुम कभी नहीं करती थीं।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "आचार्य कच ! जो तुमने किया उसकी भी मुझे तुमसे आशा कहाँ थी। मनुष्य की सभी आशाएँ तो कभी पूर्ण नहीं होतीं। आदमी सोचता कुछ है और होता कुछ है। तुम सोचो आचार्य कच ! क्या मैंने स्वप्न में भी कभी यह सोचा था कि एक दिन तुम मेरे सरल प्रेम को इस प्रकार अपने दर्शन और नीति के थोथे विचारों का प्रमाण देकर ठुकरा दोगे ? तुमने मेरे रूप की इतनी प्रशंसा करके आखिर मुझे क्यों इतने धोखे में डालने का प्रयास किया ? क्या केवल अपना काम निकालने के लिए ? तुम कहते हो कि तुमने मेरे रूप की प्रशंसा विधाता की सुन्दर कला-कृति समझकर किया। तो फिर मेरे सरल प्रेम को विधाता का सरल कला-उपहार समझकर ही तुमने ग्रहण क्यों नहीं किया ? क्या विधाता का यह उपहार इतना हेय था कि उसे आचार्य कच ग्रहण ही नहीं कर सकते थे ?" इतना कहकर देवयानी मुस्कराती हुई कटाक्ष से आचार्य कच की ओर देखती हुई बोली, "मैं

तुम से दूर-दूर इसलिए भाग रही हूँ कि मुझे पतिव्रता बनना है। तुम्हारी धर्म और समाजनीति क्या कहती है, इसके विषय में आचार्य कच ! क्या वह एक अविवाहित कन्या को किसी पुरुष के साथ हँस-खेलने और आमोद-प्रमोद में तल्लीन होने की आज्ञा देती है ?"

आचार्य कच निरुत्तर मौन खड़े रह गए। देवयानी मुस्कराकर बोली, "अपने सरल और निष्कपट प्रेम को मैं विधाता की सुन्दरतम कलाकृति मानती हूँ। यह मेरे उस बहिर रूप से कहीं अधिक सुन्दर है जिसकी अगणित बार तुमने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। आचार्य कच ! तुम कौनसी नीति के आचार्य बने हो, मैं जान नहीं पाई। तुम कहते हो तुमने मेरा अध्ययन किया और पूरी तरह समझ लिया, परन्तु मैं समझ नहीं पाई कि तुमने मेरा क्या समझ लिया ? तुमने मेरे बहिर रूप का ही अध्ययन किया, मेरे अन्तर में प्रवेश तनिक भी नहीं कर पाये।"

"मैं अपनी दुर्बलता को स्वीकार करता हूँ देवयानी ! मैंने समाज की मर्यादाओं का पालन करने के लिए तुम्हारे सरल और निष्कपट प्रेम की अवहेलना की। इस पश्चाताप की ज्वाला में कच जीवन-भर जलता रहेगा। यह मुझे स्वीकार है, परन्तु इस भौतिक जगत् के सम्मुख कच यह दृष्टांत छोड़ना नहीं चाहता कि कच ने अपनी गुरु-बहन के साथ विवाह करके समाज की मर्यादाओं को भंग किया।

तुम सोचो देवयानी ! यदि मैं और तुम ऐसा करेंगे तो इसका भावी संतति पर भला क्या प्रभाव पड़ेगा ? क्या भाई और बहन का पवित्र नाता सर्वदा के लिए आर्य-संस्कृति से लुप्त नहीं हो जायगा ?"

"तुम्हारे पास प्रमाण देने के लिए बहुत मोटे-मोटे नीति-ग्रन्थ हैं आचार्य कच ! मैं उनसे नहीं टकराना चाहती। और जो अब हो चुका, वह लौटाया भी नहीं जा सकता। मुझे जो पद तुमने सस्नेह प्रदान किया वह मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।" देवयानी बोली।

"सहर्ष स्वीकार कर लिया तुमने देवयानी ! तुमने मेरे हृदय की जलन बुझा दी। मेरे मस्तिष्क की बेचैनी दूर कर दी। तुम मेरे पास आओ बहन ! बहन को भी प्यार किया जाता है।" आचार्य कच बोले।

देवयानी मुस्कराकर पीछे हट गई।

तभी आचार्य कच के कंधे पर पीछ से हाथ रखकर महाराज ययाति बोले, "किससे बातें कर रहे थे आचार्य कच ?"

आचार्य कच सकपकाकर बोले, "क्या तुमने नहीं देखा महाराज ययाति ! देवयानी आई थी अभी। वह चली गई।"

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "देवयानी आई और चली गई। तुम उन्हें रोक भी न पाये आचार्य कच ! रोक लेते तो मैं भी दर्शन कर पाता।"

"मैं उसे रोक नहीं सकता था आचार्य कच ! मैंने अपराध जो किया है उसका। परन्तु इस बार देवयानी ने मेरा अपराध क्षमा कर दिया।" आचार्य कच बोले।

महाराज ययाति आश्रम की ओर हाथ उठाकर बोले, "आचार्य कच, आश्रम पसन्द आया। ठीक तुम्हारी कल्पना के ही अनुरूप बनी है न आश्रम की प्रत्येक वस्तु ?"

आचार्य कच बोले, "यह सब तो सुन्दर बन गया महाराज ययाति ! परन्तु इसमें भारी कमी रह गई।"

"वह क्या ?" आश्चर्य-चकित होकर महाराज ने पूछा।

"वह यह कि आश्रम में प्राणों की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी। यह सब कुछ जो यहाँ दिखाई दे रहा है, प्राण-विहीन है। यहाँ तक कि मेरे और तुम्हारे अन्दर भी मुझे प्राण दिखाई नहीं दे रहा।

वह प्राणों की प्रतिष्ठा मैं नहीं कर सकता, तुम नहीं कर सकते। वह केवल देवयानी ही कर सकती है। अभी कुछ देर पूर्व क्या देखा नहीं

था तुमने, यही निर्जीव आश्रम सजीव हो उठा था। यहाँ का अणु-अणु मुस्कराने लगा था। यहाँ की प्रत्येक वस्तु नृत्य करने लगी थी। यहाँ का हर पुष्प मुस्करा उठा था। यहाँ का हर पक्षी गुनगुना रहा था। हर वृक्ष की पत्तियाँ ताल दे रही थीं। पवन वाद्य बजा रहा था, चारों दिशाएँ संगीत से भर गई थीं। सम्पूर्ण वायु-मंडल में सौन्दर्य की चाँदनी छिटक गई थी।

यह सब इसी आश्रम में हो गया था महाराज, परन्तु अब वह सब कहाँ है ?"

महाराज ययाति बोले, "आचार्य कच ! मैं देख रहा हूँ कि देवयानी का अभाव अब आपके लिए असहनीय हो उठा है। उनके यहाँ आये बिना आपकी आत्मा को शान्ति नहीं मिल सकती।"

'यह सत्य है महाराज ! मैंने देवयानी से चलते समय कहा भी था कि तुम सम्राज्ञी बनने योग्य हो।"

"सम्राज्ञी !" महाराज ययाति बोले।

"हाँ महाराज ! मैं आचार्य हूँ, मेरा काम समीक्षा करना है। मुझ में रस नहीं रहा। तुम राजा हो। तुम में रस-ही-रस भरा पड़ा है। रस-में-रस मिल सकता है। मुझ में रस आकर स्वयं रस भी शुष्क हो जायगा। मैंने उस रस को शुष्क नहीं करना चाहा।

परन्तु राजन् ! वह रस अद्वितीय है। वह नारी नहीं विधाता की अनुपम लीला है। वह रूप अवर्णनीय है। वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। भाषा में उसके सौंदर्य को प्रकट करने की क्षमता नहीं है। उसके रूप के अणु-अणु के वर्णन में अनेक रूप-शास्त्रों की रचना हो सकती है। इन्द्र की असंख्य अप्सराओं का रूप इस रूप के सम्मुख फीका है। उस रूप के निर्माण में विधाता ने अपनी सर्वोच्च कलाकुशलता का परिचय दिया है।"

महाराज ययाति देवयानी के रूप की प्रशंसा सुन रहे थे तो उन्हें लग

रहा था कि उनके कानों में अमृत की वर्षा हो रही है और उसका रस बहकर उनके हृदय-कक्ष में प्रवेश कर रहा है। उन्हें लग रहा था कि मानो उनके जीवन में एक नवीन ज्योति का संचार हो रहा है।

तभी आचार्य कच बोले, "महाराज ययाति, विधाता ने अपनी उस कला-कृति का निर्माण करने में उसके अंग-अंग को कितना सुन्दर गढ़ा है, उसका वर्णन करने के लिए वाणी बार-बार उत्साहित होकर वर्णन करने लगती है, परन्तु हर बार परास्त होकर उसे मौन हो जाना पड़ता है। उसकी वेणी आकाश में लहराती और बल खाती हुई मेघमाला से कहीं अधिक आकर्षक और सुन्दर है। उसका उन्नत मस्तक हिमगिरि के उन्नत शिखर पर पड़ने वाले प्रातःकाल के समय की आभा को लजा देती है, उसके नेत्रों की ज्योति में प्रकृति का समस्त आकर्षण मानो आ कर सिमट गया है। विश्व में जितनी भी मादकता और सरलता विद्यमान है, वह सब उसके नेत्रों में भरी पड़ी है। विश्व में जितनी करुणा और उदात्त भावना है, वह उसकी पलकों पर बिछी है। विश्व में जितना रस प्रकृति आज तक संचित कर सकी है, वह उसकी पुतलियों में समाया हुआ है। उसकी नासिका, उसके कपोल, उसकी ग्रीवा मानो साँचे में ढली है। उसका गौरवर्ण चंद्रिका को फीका कर देने वाला है। उसका वक्ष आशा और उमंगों का लहराता हुआ उदधि है। उसके नितम्बों का सुडौल गठन चित्ताकर्षक है। उसकी गति में मलयानल की मस्ती है।"

आचार्य कच देवयानी के रूप का वर्णन कर रहे थे और महाराज ययाति उस वर्णन की सरिता में गोते लगा रहे थे। कभी वह उस रस में डूब जाते थे, कभी इधर-उधर कर आचार्य कच की वाणी से उलझ जाते थे। उनका हृदय बड़े वेग के साथ देवयानी की ओर खिंचता जा रहा था। वह आत्मविभोर हो उठे थे। उनकी भाषा मौन हो गई थी। वह एक टक आचार्य कच के मुख-मंडल पर निहार रहे थे।

आचार्य कच बोले, "महाराज ययाति ! वह वह पुष्प है कि जिसकी सुगंधि से विश्व महँक रहा है, वह वह आभा है कि जिसकी कांति से सूर्य, चन्द्र और सारे नक्षत्र आलोकित है। उसके एक-एक अंग के वर्णन में अगणित काम-शास्त्रों की रचना हो सकती है। उसके कंठ से निकलने वाला स्वर विश्व की वाणी को सरसता प्रदान करता है। उसके एक-एक विचार का स्पष्टीकरण करूँ तो न जाने कितने दर्शन-शास्त्रों की रचना हो जाये। उसकी एक-एक भावना का बखान करूँ तो भक्ति-भावना का सागर लहरा सकता है। उस देवि का सौजन्य, उसकी उदारता, उसकी सद्‌भावना, उसका मिठास, उसकी सरलता, उसकी गम्भीरता, उसकी विचार-शक्ति, उसकी सरसता, उसकी भक्ति, उसकी सेवा-वृत्ति—ये सब उसकी अपनी ही अलौकिक वस्तुएँ हैं जिनके संचालन से विश्व की शक्तियाँ संचालित होती हैं।

वह पुष्प तुम्हारे योग्य है मित्र ययाति, यदि तुम अपने को उसका सुपात्र बना सको और विधाता तुम्हारा साथ दे।

देवयानी के रूप की आचार्य कच के मुख से इतनी प्रशंसा सुनकर महाराज ययाति के हृदय में देवयानी के दर्शन की महान् उत्कंठा पैदा हुई।

वह अन्यमनस्क भाव से वोले, "आचार्य कच ! आपने अपने हृदय की पीड़ा मेरे हृदय में उतार दी। अपने मन की वेचैनी मुझे सौंप दी। परन्तु क्या कभी आपने यह भी सोचा कि यह सम्भव किस प्रकार होगा? ब्राह्मण-कन्या एक क्षत्रिय का वरण कैसे कर सकेगी और एक अनार्य-राज्य में जाकर इस पुष्प को प्राप्त कर लाना मेरे लिए सम्भव कैसे हो सकेगा!"

महाराज ययाति की वात सुनकर आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "ये सब मेरे मस्तिष्क की चिंताएँ हैं, इन्हें यहीं रहने दो ययाति ! मैं नये समाजशास्त्र और नई राजनीति का निर्माण कर रहा हूँ। उसके

अन्तर में प्रवेश करके ये वन्द द्वार स्वयं उन्मुक्त हो जाएँगे। सब लोग अपने कपाट स्वयं खोल लेंगे। और खोलेंगे क्यों नहीं, जब उसमें मानव भाव के हित की कल्पना होगी। उसमें कोई आर्य या अनार्य नहीं होगा। समस्त मानव-समाज एक सूत्र में बँधकर चलेगा।"

महाराज ययाति किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से आचार्य कच के मुख से निकलने वाले शब्दों को सुन रहे थे। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि आखिर आचार्य कच क्या करने जा रहे हैं।

वह हाथ जोड़कर बोले, "आप जो आज्ञा करेंगे, ययाति उसका पालन करने को उद्यत है।"

आचार्य कच का हृदय आलोकित हो उठा। वह बोले, "तो समस्त भारत में घोषणा करा दो कि महाराज ययाति अपना सद्भावना-संदेश लेकर देशाटन के लिए निकल रहे हैं। वह देश के आर्य और अनार्य राजाओं से समान सद्भावना और प्रेम के साथ भेट करेंगे और जो राजा हमारे धर्म, समाज तथा राजनीति में विश्वास रखेंगे उनके साथ हमारा मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो जायगा।"

आचार्य कच का संदेश पाकर महाराज ययाति तुरन्त वापस लौट गए और अपने दूतों को भारत के कोने-कोने में आचार्य कच का यह संदेश लेकर भेज दिया।

आचार्य कच अब अपने आश्रम में रहने लगे और उसमें जो कमियाँ रह गई थीं उन्हें पूरा कराने लगे। उन्हें विश्वास था कि देवयानी एक दिन यहाँ अवश्य आयेगी। उसके आने से पूर्व वह इस आश्रम में कोई कमी नहीं रहने देना चाहते थे।

—८—

आचार्य कच ने पर्वत-माला के शिखर पर खड़े होकर जो अपनी अंतिम झाँकी दी उसे हृदय-मंदिर में विभूषित कर देवयानी अपने आश्रम को लौट आई। आज रात्रि-भर वह सो नहीं सकी। गत पाँच वर्ष के कच के साथ व्यतीत जीवन की एक के पश्चात् एक झाँकी आ-आकर उसकी नींद हराम कर रही थी। जिस विटप को गत पाँच वर्ष से पानी देकर और अपनी निःस्वार्थ सेवा अर्पित करके उसने इतना बड़ा किया था उसे आचार्य कच ने एक ही झटके में मुस्कराते हुए उखाड़कर देवयानी के हाथ में दे दिया।

देवयानी के उस विटप को आचार्य कच ने समाज की मर्यादाओं के हवन-कुंड की प्रज्वलित लपटों के हवाले कर दिया। वह भस्म हो गया। देवयानी ने उसकी क्षार को उठाकर अपने मस्तक पर लेप लिया।

परन्तु फिर भी आत्मा और बदन में यह जलन क्यों? यह पीड़ा क्यों? देवयानी चटाई पर पड़ी-पड़ी सोचती रही।

देवयानी सो नहीं सकी। वह उठकर बैठी हो गई और कुटिया से बाहर निकल आई। उसका मन विचलित हो उठा था। उसने देखा कि आकाश में चन्द्रमा मुस्करा रहा था। उसे चन्द्रमा का यह मुस्कराना भला नहीं लगा। उसकी चाँदनी ने देवयानी के दग्ध हृदय को शीतलता प्रदान नहीं की। उसकी जलन, पीड़ा और बेचैनी और बढ़ गई।

वह सोच रही थी, आचार्य कच के विषय में। दर्शन-शास्त्र के

आचार्य को समाज-शास्त्र की मर्यादाओं में जकड़े खड़े देखकर उसे हँसी आ गई। वह अनायास ही खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसके मन ने कहा, 'कैसी विडम्बना है! मेरे भौतिक रूप का प्रशंसक मेरे आत्मिक स्वरूप के प्रति कुंठित ही रहा।'

देवयानी ने आकाश में मुस्कराते हुए चन्द्रमा की ओर देखा और एक टक देखती ही रही तो उसे लगा कि वह चन्द्रमा नहीं, आचार्य मुस्करा रहे थे।

देवयानी मुस्कराकर बोली, "देवयानी को यहाँ छोड़कर तुम वहाँ जा बैठे कच! ठीक है।" मन भारी करके देवयानी ने कहा, "तुम आचार्य हो गए। आचार्य का आसन इतना ही ऊँचा होता है। वह आम प्राणियों के बीच रहने की वस्तु नहीं रहता।"

तभी देवयानी ने विचित्र आश्चर्य के साथ देखा कि चन्द्रमा भूमि पर उतर आया। चन्द्रमा नहीं, आचार्य कच उसके समक्ष आकर खड़े हो गए।

आचार्य कच बोले, "देवयानी! तुम बहुत भोली और सरल हो। आचार्य कच ने यदि तुम्हारी आत्मा का अध्ययन नहीं किया तो शुक्राचार्य के आश्रम में रहकर और किया ही क्या है? तुम्हारे अन्तर और बाहर में कोई भेद नहीं है। जो बाहर है, वही अन्तर में है और जो अन्तर में है वही बाहर है।

मैंने भी तुमसे कभी कोई छल नहीं किया।"

इतना कहकर आचार्य कच ने अपने मस्तक की ओर संकेत करके कहा, "यह देख रही हो राख जो मेरे मस्तक पर लगी है, यह तुम्हारे उसी प्रेम-विटप की राख है जिसे मैंने समाज की मर्यादाओं के हवन-कुण्ड की लपटों में भस्म कर दिया।

मैं दार्शनिक हूँ, तुम भी दर्शनशास्त्र की प्रकांड पण्डिता हो। हम दोनों जानते हैं कि समाज-शास्त्र के सब बन्धन और उसकी सब मर्यादाएँ

इस भौतिक शरीर के ही साथ सम्बद्ध हैं। मेरे-तुम्हारे मिलन में दर्शन कोई प्रतिबन्ध प्रस्तुत नहीं कर सकता। उसने हम दोनों की आत्माओं को आबद्ध कर दिया। न तुम्हारे बिना मुझे चैन है और न मेरे बिना तुम्हें शांति है परन्तु जब तक हम दोनों संदेह हैं, हमें समाज-शास्त्र के नियमों का पालन करना ही होगा।

हमारे जीवन का प्रभाव मानव-जीवन पर होगा और प्रत्येक मानव दर्शनशास्त्र का आचार्य नहीं हो सकता। इस आत्मिक प्रेम की परिभाषा को समझना सबके लिए सरल नहीं। मानव इसका भौतिक रूप में अनुकरण कर उठा तो पापाचार की पराकाष्ठा नहीं रहेगी। माँ, बहन, भाई, पति, पिता—सभीकी वे मर्यादाएँ जिनके निर्माण में मानव-समाज ने घोर तपस्या की है, नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँगी।

क्या तुम समाज की इस सांस्कृतिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर सकने का साहस कर सकोगी ? मैंने अपने और तुम्हारे प्रेम-विटप को उखाड़कर मानव-समाज के कल्याण के लिए हवन-कुण्ड के हवाले किया था।

क्या अब भी तुम्हारे मन में कोई शंका है ?"

देवयानी श्रद्धा से आचार्य कच के सम्मुख झुक गई। वह सरलतापूर्वक बोली, "मैं इन सब रूपों में अपने मन को समझाने का प्रयास करती हूँ आचार्य कच, परन्तु शांति नहीं मिल रही मुझे। यह दुर्बलता क्यों है ?"

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "दुर्बलता तुम्हारी नहीं देवयानी ! यह तुम्हारे दर्शन की सफलता है। तुम्हारा दर्शन वास्तविकता के सिर पर चढ़कर बोल रहा है। उसने तुम्हारी आत्मा को जागरूक कर अपने ज्ञान की असीमित परिधि से टकराने के लिए छोड़ दिया है।

मैं सीमित क्षेत्र में विचरण कर रहा हूँ। मैं असीमित को

सीमित में बाँधना चाहता हूँ, और तुम सीमित को असीमित में ले जाना चाहती हो।

तुम्हारे ऐसा करने में तुम्हें मेरे चरित्र के अन्दर गिरावट और दुर्बलता दिखलाई देने लगती है।

परन्तु गम्भीरतापूर्वक सोचो देवयानी ! कि तुम केवल मेरी और अपनी आत्मा के विषय में सोच रही हो और मैं मानव-मात्र की आत्माओं के सही जीवन-संचालन के विषय में चिन्तित हूँ। इसी महान् कार्य की पूर्ति के दृढ़ संकल्प पर मैंने अपने और तुम्हारे प्रेम-विटप की भेंट चढ़ाई है।

जिस समय तुम्हारा दर्शन मेरी दुर्बलता को सबलता त्याग घोषित कर उठेगा, उसी समय तुम देखोगी कि तुम्हारी आत्मा को महान् शांति प्राप्त हो रही है।"

देवयानी ने हाथ जोड़कर आचार्य कच को प्रणाम किया तो उसने क्या देखा कि आचार्य कच ऊपर उठकर चन्द्रमा के स्थान पर पहुँच गए और अन्त में मुस्कराकर बोले, "तुम सम्राज्ञी बनोगी देवयानी ! तुम्हारा पाणिग्रहण-संस्कार आचार्य कच कराएगा।"

देवयानी ने देखा कि उसके मन की पीड़ा थोड़ी देर में न जाने कहाँ विलुप्त हो गई। उसका मन झंकृत-सा होकर नाच उठा। वह दौड़ी-दौड़ी आश्रम के उन सब स्थानों पर गई जो उसके और आचार्य कच के स्वच्छंद विहारों के साथी थे।

देवयानी ने उन सब स्थानों पर पुष्प चढ़ाए और दो-दो घड़ी बैठ कर उन बातों का स्मरण किया जो कभी वहाँ हुई थीं, उन्हें स्मरण करके अब देवयानी के हृदय में पीड़ा का उद्रेक नहीं हुआ। एक मीठी-मीठी गुदगुदी-सी हुई और हृदय उल्लास से भर गया।

वह लौटकर अपनी कुटिया पर आई तो शर्मिष्ठा उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी। देवयानी को देखकर बोली, "आज सवेरे-ही-सवेरे किधर

निकल गई देवयानी ! क्या आज अकेली ही उद्यान-विहार को चली गई थी ?"

और फिर ब्रह्मचारी कच की ओर संकेत करके बोली, "देख लिया तुमने देवयानी, उस रस के भौंरे को। कितना कपटी निकला ! मुझे और तुम्हें, दोनों को मूर्ख बनाकर चला गया।"

देवयानी शर्मिष्ठा की बात सुनकर मुस्करा दी और मुस्कराकर ही बोली, "तुम बाँध नहीं पाईं इस भौंरे के परों को शर्मिष्ठा !"

शर्मिष्ठा तनिक आवेश में बोली, "मैं तुम्हारे भय से कुछ नहीं बोल सकी देवयानी ! वरना एक-एक पर नोचकर डाल देती उसका। फिर देखतीं तुम कि वह पर-विहीन न होकर कैसा इसी भूमि पर भिन्न-भिन्न करके तड़फड़ाता और तड़फड़ाता-तड़फड़ाता ही प्राण दे जाता।"

तो तुम उसके प्राण भी ले लेतीं शर्मिष्ठा ! ऐसा उस बेचारे ने क्या अपराध किया था। परदेशी था ? अपने देश में आया था। इतने दिन तुम्हारे आश्रम की सेवा की, तुम सबकी सेवा की।

इसका पुरस्कार क्या तुम उसे यह देतीं कि उसके पर नोचकर उसे भूमि पर पटक देतीं और असहाय पड़ा छोड़कर मृत्यु को प्राप्त होने के लिए छोड़ देतीं ?" देवयानी ने कहा।

देवयानी की बात सुनकर शर्मिष्ठा को क्रोध आ गया। वह वक्र दृष्टि करके बोली, "वह साधु के वेश में लुटेरा था देवयानी ! उसकी सरलता के आवरण में घोर कुटिलता छिपी हुई थी। मैं इसीलिए उसे अधिक मुंह नहीं लगाता।

तुम उसके ऊपर दीवानी हो उठी थीं। मैं बीच में नहीं आई कि कहीं तुम्हारे मन में मेरे प्रति दुर्भावना पैदा न हो जाय।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "दुर्भावना ! पगली कहीं की। देवयानी के मन में दुर्भावना भी पैदा होगी तो शर्मिष्ठा के प्रति ? जितनी मैं भोली हूँ, उतनी ही तुम मूर्ख हो शर्मिष्ठा ! बेचारे आचार्य कच को

जाने क्या-क्या दोष लगा बैठीं।"

"तो तुम्हारे मन में अभी पीड़ा शेष है, उस निर्मोही के प्रति ? तुम उसे पाले रहो अपने हृदय-कक्ष में और दीवानी बनी फिरो रात-दिन, मुझे क्या ?" रूठने की मुद्रा बनाकर शर्मिष्ठा बोली।

देवयानी बोली, "शर्मिष्ठा, आचार्य कच को समझना तुम्हारी सामर्थ से बाहर की बात है। पाँच वर्ष उनके साथ-साथ रहकर मैं ही नहीं समझ पाई उन्हें।

उन्होंने सच ही कहा था कि जिसका मैं साथ रहकर अध्ययन न कर सकी, उसका अध्ययन उससे बिछुड़कर कर सकूँगी।"

"तो अध्ययन करती रहो तुम देवयानी ! मेरे पास इतना समय नहीं। मेरे मन में उस व्यक्ति के लिए कोई पीड़ा नहीं।" कहकर शर्मिष्ठा इठलाती हुई देवयानी की कुटिया से बाहर हो गई।

देवयानी एकान्त में बैठी रह गई। उसके मन में इस समय असीम शांति थी। उसका मन कच के प्रति श्रद्धा और भक्ति से भर गया था।

वह उठकर उस सामने वाले प्रपात की ओर चली गई, जिसके किनारे पर बैठकर वह आचार्य कच के साथ न जाने कितनी देर तक मधुर बातें किया करती थी, प्रकृति के सरल सौंदर्य की चर्चा किया करती थी और इस चर्चा को घुमा-फिराकर आचार्य कच देवयानी के रूप-वर्ण पर ले आते थे और देवयानी मुग्ध बनी सुनती रहती थी, और मधुर रस की धारा में बहती रहती थी।

वह वहीं जाकर एक स्फटिक शिला पर बैठ गई। उसने प्रपात के जल पर दृष्टि डाली तो लगा कि मानो आचार्य कच विशुद्ध जल के बीच बैठे थे और देवयानी की ओर देख रहे थे।

आचार्य कच बोले, "मन को कुछ शान्ति मिली देवयानी !"

देवयानी के होठों पर मधुर मुस्कान थिरक उठी। वह सरल वाणी

में बोली, "मिली शांति !"

आचार्य कच प्रसन्न हो उठे और उल्लास के साथ बोले, "आश्रम के उद्यान में तुम्हें अकेली खड़ी छोड़कर मैं जिस दिन तुमसे विदा हुआ था, उस दिन से आज तक मेरा हृदय जल रहा था। संसार के सब कार्य विधिवत् करते हुए भी मेरा मन अशान्त रहता था। तुम्हारे कोमल हृदय पर मेरे कठोर सिद्धान्त की जो गहरी चोट पड़ी उसकी पीड़ा से मेरा मन व्याकुल हो उठा था। रात्रि को मैं सो नहीं सका।

इस समय तुम्हारे मुख पर मुस्कराहट देखकर मेरे मस्तिष्क की बहुत-सी चिन्ता दूर हुई। मेरे हृदय को महान् शान्ति प्रदान की तुमने देवयानी ! इसके लिए मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूँ।"

देवयानी आचार्य कच की बात सुनकर तनिक लजा गई और मुग्ध दृष्टि से उनकी ओर देखकर बोली, "आचार्य कच ! मैं आपके हृदय की इतनी पीड़ा और मस्तिष्क की इतनी चिंता का कारण बनी, इसका मुझे हार्दिक खेद है। आपके महान् त्याग को परखने में मुझे देर लगी, इससे भी मेरा मन दुखी है।

अचानक ही अपनी भावनाओं का संसार उजड़ा हुआ देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो गया था, बुद्धि ने काम करना बन्द कर दिया था। मैं स्वयं भी रात्रि-भर नहीं सो सकी थी और मन को धीरे-धीरे सहलाकर सांत्वना देती रही थी।

अब मेरा मन बिलकुल शान्त है। उसमें किसी प्रकार का कोई विकार नहीं है। मैं अपने भाई के विशुद्ध प्रेम के बन्धन में बँधी शांतिपूर्वक अपने नित्य-कर्मों में संलग्न रहूँगी। आप निश्चित भाव से अपने लक्ष्य की पूर्ति की ओर अग्रसर हों। मानव-कल्याण के जिस अमूल्य उद्देश्य को लेकर आपने जीवन-पथ पर पग बढ़ाया है, आपकी बहन का उसमें पूर्ण-सहयोग आपको मिलेगा।"

आचार्य कच की छाया पानी में विलीन हो गई।

देवयानी प्रसन्न-चित्त वहाँ से उठकर गुनगुनाती हुई मस्ती के साथ अपनी कुटिया की ओर बढ़ गई और फिर वहाँ से अतिथिशाला की ओर चली गई।

—९—

आचार्य कच का मन अब बहुत शान्त था। महाराज ययाति के साम्राज्य की व्यवस्था आचार्य कच की नवीन राजनीति द्वारा संचालित हो बहुत सुदृढ़ हो गई थी। महाराज ययाति के गौरव की पताका देश के कोने-कोने में फहरा रही थी।

आचार्य कच की नवीन घोषणा के आधार-स्वरूप महाराज ययाति की यात्रा की तय्यारियाँ हो रही थीं। उन्हें विदाई देने के लिए एक विराट आयोजन किया गया था।

आज की सभा में भारत के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था।

आचार्य कच सर्वोच्च आसन पर विराजमान थे। महाराज ययाति आचार्य कच के आसन से नीचे सिंहासन पर बैठे थे। आचार्य कच खड़े होकर बोले, "उपस्थित महानुभावो !

आज का यह समारोह जिस उपलक्ष्य में किया गया है वह महाराज ययाति की वह महान् यात्रा है जिससे भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ आने वाला है।

मैं देख रहा हूँ कि भारत की शक्ति आर्य और अनार्य—दो भागों में विभक्त हो गई है, यह बड़े दुःख की बात है। हम लोगों ने व्यर्थ मानव-मानव के बीच यह भेद-भाव उत्पन्न करके अपने जीवन की समस्याओं और उलझनों को बढ़ा लिया है। हमें परस्पर प्रेम-भाव से रहना चाहिए।

महाराज ययाति यही प्रेम का संदेश वहन करके देशाटन के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। दिग्विजय महाराज ययाति कर चुके और उससे राज्य सुदृढ़ हुआ, परन्तु फिर भी उस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकी जिससे ऐसे साम्राज्य की व्यवस्था होती जिसके प्रति किसीके मन में द्वेष न हो, क्रोध न हो, वैमनस्य न हो और सद्भावना बनी रहे।

महाराज ययाति इसी उद्देश्य से यह यात्रा कर रहे हैं। मेरी शुभ-कामनाएँ आपके साथ हैं और मुझे पूर्ण विश्वास है कि महाराज ययाति अपने इस कार्य को महान् सफलता के साथ पूर्ण करेंगे।"

महाराज ययाति के मस्तक पर आचार्य कच ने तिलक किया और उनके गले में पुष्प-हार डाला।

सभा के उपस्थित सज्जन नगर से काफी दूर तक महाराज ययाति को विदा करने के लिए आये और अंत में महाराज ययाति आचार्य कच के चरण छूकर रथ में बैठ गए।

दूसरे ही दिन से महाराज ययाति जिस-जिस राज्य में अपना प्रेम-संदेश लेकर जाते थे, वहाँ से आचार्य कच के पास सूचना आने लगी।

आचार्य कच की यह संगठन-नीति आचार्य शुक्राचार्य की विध्वंस-नीति पर विजय प्राप्त करती जा रही थी। देश में फैली अनार्य-शक्ति के पैर तो पहले ही महाराज ययाति की दिग्विजय ने उखाड़ दिए थे। वे सब अपने मन से महाराज ययाति के पौरुष का लोहा मान चुके थे। परन्तु इनके सम्मुख सिर न झुकाने की ऐंठ अभी उनमें शेष थी।

उनकी इस ऐंठ का आचार्य कच ने महाराज ययाति को सद्भावना-यात्रा पर भेजकर उन्हें भी अपने आँचल में समेट लिया और वे सब स्वयं अपनी ओर से महाराज ययाति को अपने-अपने राज्यों की यात्रा करने का निमंत्रण भेजने लगे।

महाराज ययाति को जिस राज्य से भी निमंत्रण प्राप्त होता था वह उसी राज्य की ओर घूम जाते थे और इस प्रकार सफलतापूर्वक अपने

लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे ।

आचार्य कच मन-ही-मन अपनी सफलता पर प्रसन्न थे । वह सोच रहे थे कि इस समय देवयानी होती तो उसे इस महान् चमत्कार की सूचना देता । वह गद्गद हो उठती, आनंद-विभोर हो जाती ।

यही विचार करते-करते आचार्य कच अपने आश्रम की ओर निकल गए । थोड़ी देर अपनी कुटिया में बैठे तो मन नहीं लगा उनका । वह वहाँ से उठकर उस सामने बहने वाले प्रपात के पास पहुँच गए और वहीं खड़े होकर ध्यानपूर्वक उसके स्वच्छ जल पर दृष्टि डाली तो उन्हें अपनी ही परछाईं उसमें दिखलाई दी ।

वह बड़े ध्यान से उस परछाईं को देखते रहे । देखते-देखते वह परछाईं रूप बदलने लगी और देखा कि देवयानी सामने जल में खड़ी मुस्करा रही थी ।

प्रपात के जल से स्नान करके-ऊपर उठी थी वह । उसके केशों की भीगी लटों से जल-विन्दु मुक्ताओं के समान झड़ रहे थे ।

देवयानी ने आचार्य कच को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया ।

आचार्य कच बोले, "तुम आ गईं देवयानी ! मैं अभी-अभी तुम्हें ही याद कर रहा था ।"

देवयानी मुग्ध मन से बोली, "आपको एक शुभ सन्देश देने आई हूँ ।"

देवयानी की बात सुनकर आचार्य कच अपनी बात भूल गए और उत्कंठा के साथ बोले, "तुम्हारा शुभ सन्देश सुनने के लिए कच के कान व्याकुल हो उठे हैं देवयानी ! सुनाओ अपना मधुर संदेश ।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "पहले आचार्य कच को उनकी नवीन राजनीति की सफलता पर धन्यवाद दे लूँ । तब वह संदेश सुनाऊंगी !

कल संध्या को पिताजी ने सहर्ष मुझसे कहा, 'बेटी देवयानी, हमारे शिष्य कच ने चमत्कारपूर्ण कार्य किया है । हमने आर्य-राज्यों में फैले

दुराचार को देखकर अनार्य-राज्यों को संगठित किया और उनके द्वारा उन्हें त्रस्त कराकर सुमार्ग पर आने का संदेश दिया। हमारी यह नीति विध्वंस पर आधारित थी।

पुत्र कच ने इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है। उसने आर्य और अनार्य के भेद-भाव को ही सर्वदा के लिए मिटाने की जिस नीति का संचालन किया है उसमें उसे महान् सफलता मिली है।

आज मैं देख रहा हूँ कि मेरा आशीर्वाद सफल हो रहा है।"

देवयानी के मुख से अपने कार्य की प्रशंसा सुनकर और वह भी वह प्रशंसा जो स्वयं आचार्य शुक्राचार्य ने की, आचार्य कच के आनन्द का ठिकाना न रहा। उनकी आत्मा खिल उठी। उन्हें लगा कि उन्हें अपनी समस्त विद्या, तपस्या और परिश्रम का सुन्दर-से-सुन्दर फल प्राप्त हो गया।

आचार्य कच चकित होकर बोले, "क्या सच कह रही हो देवयानी कि आचार्य शुक्राचार्य ने अपने पुत्र कच की राजनीति की सराहना की ?"

"बिलकुल सच कह रही हूँ आचार्य कच ! बल्कि यों कहिए कि मैंने उनके शब्द ज्यों-के-त्यों उच्चारण किए हैं आपके सम्मुख।

अब दूसरा संदेश सुनने के लिए आतुर हो उठिए आप।" देवयानी मुस्कराकर बोली।

आचार्य कच ने इस सब बात को भूलकर अपने कान देवयानी की वाणी से लगाकर कहा, "मैं उद्यत हूँ देवयानी !"

देवयानी तनिक लजाकर बोली, "पिताजी ने राजा वृषपर्वा को भी आदेश दिया है कि वह सादर महाराज ययाति को अपने राज्य में निमंत्रित करें।

यह संदेश महाराज ययाति के पास भेज दिया गया है।"

"क्या सचमुच सच !" आचार्य कच प्रसन्नता में आत्मविभोर होकर बोले।

"बिलकुल सच !" देवयानी ने कहा। इतना कहकर देवयानी पानी में विलीन हो गई।

आचार्य कच की कल्पना पूर्ण हुई। उनके मन की सारी द्विविधा जाती रही। वह अपनी कुटिया में आ गए।

तभी राज्य के अन्य मंत्रिगण वहाँ पर आ पधारे। महाराज ययाति की अनुपस्थिति में राज्य-कार्यों के संचालन का उत्तरदायित्व भी आचार्य कच ही सँभालते थे।

मंत्रियों ने आज के समाचार आचार्य कच को दिए। उनमें महाराज वृषपर्वा का भी एक पत्र था जिसे आचार्य कच ने सबसे पृथक करके अपने हाथ में ले-लिया और बड़े ध्यान से पढ़ा।

आचार्य कच ने उस पत्र का पूर्ण अध्ययन करके यह देखा कि कहीं उसमें राजनीति की कोई गहरी चाल तो नहीं थी। कहीं आचार्य शुक्राचार्य ने अपनी राजनीति की असफलता पर झुँझलाकर कोई कुचक्र तो नहीं चलाया था, परन्तु पत्र बहुत सरल और स्पष्ट था। उसमें स्पष्ट रूप से आचार्य कच की नीति की प्रशंसा की गई थी और वह पत्र आचार्य शुक्राचार्यजी का ही लिखाया हुआ था। उसका एक-एक शब्द आचार्यजी का था।

आचार्य कच को आज महान् आत्म-संतुष्टि मिली।

मंत्रियों को उनके कार्यों के विषय में उचित परामर्श देकर विदा कया।

—१०—

आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम की ख्याति देश-देशांतरों में हो चुकी थी। देश-विदेशों के जो यात्री भारत-भूमि की यात्रा के लिए आते थे,

वे आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में अवश्य जाते थे ।

इन यात्रियों के सुप्रबन्ध का पूरा उत्तरदायित्व देवयानी के ऊपर था । अतिथिशाला का प्रबन्ध देवयानी ही सँभालती थी ।

ये यात्री यहाँ से शुक्राचार्य के आश्रम की जहाँ अन्य विशेपताओं से परिचय प्राप्त करते थे, वहाँ देवयानी के रूप और उसके गुणों से भी उनका परिचय अनायास हो जाता था ।

ये लोग यहाँ से जहाँ भी जाते थे वहाँ जाकर शुक्राचार्य के आश्रम की चर्चा होती थी । उस चर्चा में चाहे कोई वात छूट जाती थी परन्तु देवयानी के रूप का वर्णन नहीं छूटता था ।

इस प्रकार देवयानी के रूप की प्रशंसा दिग्दिगन्त में व्याप्त होती जा रही थी ।

देवयानी की यह प्रशंसा शर्मिष्ठा को कतन पसन्द नहीं थी । वह ऊपर से देवयानी से प्रेम ही प्रदर्शित करती थी परन्तु उसके हृदय में हर समय द्वेप की ज्वाला सुलगती रहती थी । वह अपने सम्मुख देवयानी को तनिक भी रूपवती नहीं मानती थी । वह उन लोगों को भी मूर्ख और अंधा समझती थी जो उसके रूप को सामने देखकर भी देवयानी की ओर आकर्षित होते थे ।

शर्मिष्ठा के हृदय का द्वेप दिन-प्रतिदिन प्रखर रूप धारण करता जा रहा था, परन्तु देवयानी उसे वैसा ही स्नेह करती थी जैसा पहले से करती आई थी ।

शर्मिष्ठा बहुत-से मूर्खतापूर्ण कार्य भी करती थी परन्तु वह उससे कभी रुष्ट नहीं होती थी ।

इधर शर्मिष्ठा उसके प्राण तक लेने पर उतारू हो चुकी थी । अपने रूप को—चुनौती देने वाले रूप को वह सहन नहीं कर सकती थी । उसकी दृष्टि जब देवयानी के रूप पर पड़ती थी तो उसके हृदय में ज्वाला प्रज्वलित हो उठती थी । वह उस रूप को सहन नहीं कर सकती थी ।

एक दिन संध्या को शर्मिष्ठा देवयानी से बोली, "देवयानी, चलो आज उद्यान की ओर चलें। ब्रह्मचारी कच यहाँ से क्या चले गए कि तुमने घूमना-फिरना ही छोड़ दिया।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "चलती हूँ शर्मिष्ठा, तनिक अतिथियों के भोजन का प्रबन्ध कर चलूँ। आज बहुत दूर-दूर के यात्री पधारे हुए हैं।"

"भला कहाँ-कहाँ के देवयानी ?" शर्मिष्ठा ने पूछा।

"कुछ पर्वत-प्रदेश के हैं और कुछ मरु-प्रदेश के। एक यात्री बंग-प्रदेश का भी है उनमें। बहुत सुन्दर जादू के चमत्कार दिखाता है वह।" देवयानी मुस्कराकर बोली।

"भला कैसे-कैसे जादू दिखाता है वह ?" शर्मिष्ठा ने पूछा।

"सुना है, वह पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष बना देता है।" कहकर देवयानी मुस्करा दी।

शर्मिष्ठा देवयानी को उपहास में धक्का देती हुई बोली, "चल देवयानी ! मेरा मन नहीं लग रहा यहाँ। आज बहुत देर से कहीं घूमने का मन हो रहा था और हाँ ! मुझे तो आज नीले कमल के फूल भी लाने हैं। प्रातःकाल पिताजी शिव की उपासना नीले कमलों से ही करते हैं।"

"नीले कमलों से !" देवयानी ने कहा। "ऐसा कब से करने लगे चाचाजी ! मैंने तो उन्हें सर्वदा कनेर के पुष्पों और वेल-पत्रों से शिव-पूजा करते देखा है।" देवयानी बोली।

शर्मिष्ठा बोली, "नहीं, अब नीले कमलों से ही करते हैं। उद्यान के जलाशय में बहुत खिले हैं नीले कमल, जितने चाहती हूँ, तोड़ लाती हूँ।"

देवयानी ने सरलतापूर्वक शर्मिष्ठा की बात का विश्वास कर लिया। इसमें अविश्वास की उसे कोई बात दिखाई नहीं दी।

देवयानी बोली, "अच्छा तू तनिक यहाँ बैठ, मैं अभी आती हूँ। फिर

साथ-साथ उद्यान की ओर चलेंगे।"

देवयानी ने वापस आने में विलम्ब नहीं किया और तुरन्त ही दोनों उद्यान की ओर प्रस्थान कर गईं।

दोनों भ्रमण करती हुई जलाशय के निकट पहुँच गईं। फिर दोनों उधर को चल दीं जिधर जलाशय में नीले कमल खिले हुए थे।

शर्मिष्ठा ने अपना हाथ कमल तोड़ने के लिए बढ़ाया, परन्तु कमल एक भी हाथ न आ सका उसके।

वह देवयानी से बोली, "बहन देवयानी! मैं नित्य एक लकड़ी लाती थी अपने साथ, उसीकी सहायता से पुष्प तोड़ लेती थी। आज वह लाना भूल गई। तनिक तुम ही मेरी सहायता करो। मुझे विश्वास है कि तुम्हारा हाथ कमल तक पहुँच जायगा।"

देवयानी शर्मिष्ठा की चाल को न पहचान सकी। भोली आचार्य-कन्या ने जलाशय की मुँडेर पर झुककर कमल-पुष्प तोड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ा दिया और आधी से अधिक जलाशय में लटक गई।

शर्मिष्ठा ने उपयुक्त अवसर पाकर अपने चारों ओर देखा, दूर-दूर तक कोई दिखाई नहीं दिया।

शर्मिष्ठा ने जलाशय में झुकी देवयानी को अपने हाथ की ठेस देकर पानी में गिरा दिया।

देवयानी पर-कटे पक्षी के समान जलाशय में गिर पड़ी। उसके गिरने का नाद वायुमंडल में गूँज कर चारों दिशाओं में फैल गया, परन्तु वहाँ सुनने वाला कौन था!

किसीने देखा नहीं, यह जान कर शर्मिष्ठा को हार्दिक संतोष हुआ। उसने यह कार्य करके अपने हृदय में असीम शान्ति और आनन्द का अनुभव किया। उसके रूप को चुनौती देने वाला रूप संसार से उठ गया। अब शर्मिष्ठा का ही रूप—रूप कहलाएगा। देवयानी का रूप उसके सम्मुख आकर उसके आनन्द को खंडित नहीं करेगा।

यह विचार मन में आने के पश्चात् शर्मिष्ठा को भय हुआ कि कहीं कोई वहाँ आ न जाय और भेद न खुल जाय। इसलिए वह धीरे-धीरे वहाँ से अपने राजमहल की ओर प्रस्थान कर गई।

मार्ग में वह चोरों की भाँति चली, कि कहीं कोई उसे पहचान न ले और फिर राजपथ आ जाने पर वह भयंकर गति से गुनगुनाती हुई आगे बढ़ने लगी। इस समय उसके वक्षस्थल में उभार आ गया था। उसके नेत्रों से मादकता छलक रही थी। यौवन का उन्माद उसे मत-वाली बनाये दे रहा था। वह मस्ती में इठलाकर गुनगुनाती हुई गा उठी।

जिस समय उसने महल में प्रवेश किया तो उसके कंठ से मधुर रागनी निकल रही थी। रागनी के शब्द विजय के स्वरों में मुखरित हो रहे थे।

वह महल में जाकर सीधी अपने कमरे में पहुँचकर नाच उठी। वह आज बड़ी तन्मयता से नाची और नाचती ही रही न जाने कितनी देर तक।

—११—

देवयानी को शर्मिष्ठा अपनी समझ से शव गिनकर अपने महल को चली गई थी। परन्तु उसके पानी में गिरने का जो नाद हुआ वह संध्या-समय की निस्तब्धता में दूर-दूर तक फैल गया।

महाराज ययाति अपनी यात्रा से लौट रहे थे। उनके सैनिकों का पड़ाव यहाँ से पर्याप्त दूरी पर था। वह किस दिशा में था इस समय उन्हें इस बात का भी ज्ञान नहीं था।

वह एक हिरन का पीछा करते-करते इधर आ निकले थे और सोच रहे थे कि अब किस दिशा में प्रस्थान करें जिससे उनकी अपने सैनिकों से

भेट हो सके।

इसी समय "छप्प' का स्वर उनके कानों में पड़ा। वह कह उठे, 'कोई पानी में गिरा मालूम देता है।' इतना कहते ही उन्होंने अपने घोड़े को उसी दिशा में दौड़ा दिया जिधर से यह स्वर आया था।

महाराज ययाति जलाशय के किनारे पहुँच गए। उन्होंने पानी की ओर देखा तो शान्त पानी में गोलाकार लहरें चलती दिखाई दीं। एक स्थान पर कुछ पानी में बूड़ता-उतराता भी दिखाई दिया।

महाराज ययाति तुरन्त जलाशय में कूद गए और क्षण-भर में देवयानी को पानी से बाहर निकाल लाए। ययाति ने देखा कि डूबने वाला कोई पुरुष नहीं था, एक सुन्दर कन्या थी। उन्होंने उसे लाकर हरी घास में लिटा दिया। वह अचेतन अवस्था में थी।

ययाति उसके पास खड़े होकर उसके सचेत होने की प्रतीक्षा करने लगे।

उन्होंने देखा कि जिसे वह पानी से निकालकर लाये थे वह अत्यन्त रूपवती थी, अनुपम सुन्दरी थी। उसका गौर-वर्ण चन्द्रिका को लजाने वाला था। उसके एक-एक अंग को विधाता ने नाप-तौलकर बनाया था। उसके प्रत्येक अंग का उभार नयनाभिराम था।

यह सब देखकर महाराज ययाति के मन में शंका हुई कि कहीं यह देवयानी ही तो नहीं है! कहीं यह आचार्य कच के विछोह से पीड़ित होकर ही तो जलाशय में नहीं कूद पड़ी है!

महाराज ययाति का मन उद्भ्रांत हो उठा।

परन्तु तभी देवयानी ने नेत्र खोल दिए। उसके बदन में एक सिहरन-सी हुई, एक कम्पन हुई और वह अपने भीगे वस्त्रों में ही लिपट-सिमट-कर बैठ गई।

महाराज ययाति एकटक देवयानी की ओर देखते रहे। कितना सुन्दर रूप था! इस रूप का परित्याग करके जाने वाले आचार्य कच के

आदर्श के सम्मुख ययाति का मस्तक झुक गया। वह मन-ही-मन बोले, 'आचार्य कच ने इस रूप की कुछ भी तो प्रशंसा नहीं की। सचमुच वह कर ही नहीं सके। उनके पास इस रूप को व्यक्त करने योग्य शब्द ही नहीं थे। यह अवर्णनीय रूप था।'

देवयानी ने नेत्र खोलकर पहले चकित दृष्टि से चारों ओर देखा और फिर उसकी दृष्टि महाराज ययाति पर ठहर गई। वह बहुत देर तक एकटक ययाति के मुख पर देखती रही।

वह समझ गई थी कि इसी व्यक्ति ने जलाशय से उसे निकालकर उसके प्राणों की रक्षा की है। उसने महाराज ययाति को कृपासिन्धु के समान देखा। उसे महाराज ययाति की आकृति बहुत ही हृदयग्राही प्रतीत हुई। उसके रूप में महान् आकर्षण था।

तभी ययाति ने देवयानी के निकट जाकर धीरे-से पूछा, "आपको कहीं चोट तो नहीं आई ?"

देवयानी ने मुख से एक शब्द नहीं बोला। केवल-मात्र नेत्रों के संकेत से ही कह दिया कि वह अब पूर्ण रूप से स्वस्थ है और उसके बदन पर कहीं कोई चोट नहीं आई। उसके बदन में अब कहीं किसी प्रकार की पीड़ा नहीं है। उसका बदन नितान्त स्वस्थ है।

पानी से भीगे वस्त्रों से टकराकर पवन और भी शीतल हो उठा था। देवयानी और ययाति के बदन में वह शीतलता विचित्र मादकता-सी भरती जा रही थी। दोनों मौन थे परन्तु दोनों ही एक। दूसरे से बातें कर रहे थे। उनके नेत्रों की पुतलियाँ चल रही थीं और उनके मुखारविन्दों पर भी भाँति-भाँति के भाव आकर खिलते, जलते और बुझते जाते थे। उनके मुख का वर्णन भी परिवर्तनशील था।

दोनों के भावों और उनके प्रभावों का आदान-प्रदान चल रहा था। अन्त में दोनों के मुख पर हास्य की स्निग्ध रेख खिच गई।

देवयानी ने इठलाकर अँगड़ाई लेते हुए दूसरी ओर को करवट ली ।

महाराज ययाति अब देवयानी के बिलकुल निकट पहुँच गए और धीरे-से कहा, "बहुत रात हो रही है । मुझे अभी बहुत दूर जाना है । चलो, तुम्हें तुम्हारे घर तक पहुँचा आऊँ । संध्या के धूमिल प्रकाश पर रात्रि का अन्धकार छा गया ।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, इनमें से कोई भी स्थायी नहीं है अपरिचित व्यक्ति ! रात्रि का अन्धकार भी अभी आप देखेंगे कि चन्द्रमा की चाँदनी के सामने कैसे अपने सिर पर पैर रखकर भागता है ।"

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "क्या मैं यह जानने की धृष्टता कर सकता हूँ कि मैं इस समय कहाँ पर हूँ । मैं अपने साथियों से बिछुड़ कर इधर भटक रहा था, कि तभी किसी व्यक्ति के जलाशय में कूदने का स्वर सुनाई दिया ।"

महाराज ययाति की बात पर देवयानी मुस्कराकर बोली, "कूदने, गिरने या गिराये जाने का ? क्या इन दोनों शब्दों में कोई भेद नहीं है अपरिचित व्यक्ति !"

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "समझा, मुझे 'कूदने के स्थान पर गिर जाना अथवा गिराया जाना शब्द का प्रयोग करना चाहिए था ।"

'गिराया जाना' कहकर देवयानी सरलता से मुस्करा दी और फिर मादक नेत्रों से महाराज ययाति की ओर देखकर हँसती-सी बोली, '"क्या कभी यह सम्भव हो सकता है अपरिचित व्यक्ति, कि जिसे मैं बाल्यकाल से अपनी बहन के समान प्रेम करती आ रही हूँ, मेरी वही सखी मुझे जलाशय में गिरा दे ?"

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "सम्भव क्यों नहीं हो सकता अपरिचित कन्ये ! आपके समझने में और उसके समझने में अन्तर हो सकता है । आपका रूप ही ऐसी वस्तु है जो अन्तर डाल सकता है ।"

"मेरा रूप !" आश्चर्य-चकित होकर देवयानी ने ययाति की ओर देखा ।

"हाँ अपरिचित कन्ये !" और फिर बात बदलकर बोला, "मैं इस समय कहाँ हूँ, इस पर आपने प्रकाश नहीं डाला। मुझे शीघ्र लौटने की चिन्ता है । मेरे सैनिक मेरी खोज में व्याकुल हो उठे होंगे ।"

"तो आप राजा हैं ।" महाराज ययाति की बात का कोई उत्तर न देकर मुग्ध दृष्टि से उनकी ओर देखती हुई देवयानी बोली, "क्षमा कीजिए, मैं आपको अपरिचित व्यक्ति कहकर ही सम्बोधित करती रही । क्या आपके शुभ नाम का मैं परिचय प्राप्त कर सकती हूँ ?" वह अपना ही प्रश्न करती गई । महाराज ययातिजी कुछ कह रहे थे उसका उसे तनिक भी ध्यान नहीं था ।

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "बड़ी विचित्र बात है । मेरी बात का मानो आप उत्तर ही नहीं देना चाहतीं । आपको मेरी चिन्ता की कोई चिन्ता नहीं ।"

महाराज ययाति की बात सुनकर देवयानी ने एक अँगड़ाई ली और मौज के साथ हरी घास पर लेट गई । उसके वक्षस्थल में उभार आ गया । वह हँसकर बोली, "अब क्या कहीं जाने का समय रहा है राजन् ! रात्रि में क्या आप अपने सैनिकों को खोज सकेंगे ?

और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आप इतनी बड़ी भूल कर चुके हैं कि पिताजी आज आपको क्षमा नहीं कर सकते । यदि आपने भागने का प्रयास किया तो हमारी सेना आपको बन्दी बना लेगी ।"

"आपकी सेना !" देवयानी के ये शब्द सुनकर महाराज ययाति ने कहा । उनके मस्तिष्क में विचारों की जो लड़ी बँधी थी, वह मानो सब छिन्न-भिन्न हो गई । उनके बदन में सिहरन-सी आ गई ।

वह मन-ही-मन बोले, "तो क्या यह देवयानी नहीं है, कोई राज्य-कन्या है ?'

देवयानी ने मुस्कराकर कहा, "तो क्या आप समझते हैं कि आपके ही पास सेना है ? हमारे पास नहीं है ?"

महाराज ययाति बोले, "मुझसे बहुत भूल हुई राज्य-कन्ये !"

देवयानी खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसती-हँसती बोली, "राज-कन्या मत कहो राजन् ! आचार्य-कन्या कहो। वह आचार्य जिसके संकेत पर चारों दिशाओं से सैन्य-दल उमड़ उठते हैं।"

"क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ अपरिचित कन्ये ?" महाराज ययाति विनम्रतापूर्वक बोले ।

"अपना परिचय दिए बिना आचार्य-कन्या का परिचय कैसे मिल सकता है आपको राजन् !" देवयानी बोली ।

महाराज ययाति मुस्कराकर बोले, "मेरा नाम ययाति है। एक छोटा-सा राज्य है मेरा ।"

देवयानी ययाति का परिचय प्राप्त करके उद्वेलित हो उठी और तुरन्त उठकर बैठी होती हुई बोली, "आप राजा ययाति ! आचार्य शुक्राचार्य की कन्या देवयानी आपको सादर प्रणाम करती है। साथ ही अपनी सुरक्षा और प्राणदान के लिए हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है।"

देवयानी के ये शब्द सुनकर महाराज ययाति ठगे-से रह गए। उनकी भाषा मौन हो गई। प्रकृति और विधाता की वह अनुपम कलाकृति, जिसके रूप का आचार्य कच ने वर्णन किया था उसके सम्मुख खड़ी थी ।

ययाति की स्तब्ध दृष्टि को देखकर देवयानी ने पूछा, "आप इस प्रकार आँखें गड़ाकर क्या देख रहे हैं ?"

"मैं देख रहा हूँ आचार्य-कन्ये कि आचार्य कच ने आपके रूप का जो वर्णन किया है आप उनके वर्णन की साक्षात् प्रतिमा हैं। उन्होंने आपके रूप का बखान करने में कोई अतिशयोक्ति नहीं की।" महाराज ययाति बोले, "आचार्य कच के नपे-तुले शब्दों को मानो विधाता ने आपके

निर्माण में ज्यों-का-त्यों कलाकारिता के साथ एकत्रित कर दिया है। परन्तु सचमुच विधाता ने अपने सहृदय कलाकार होने का परिचय दिया है आपके रूप-निर्माण में। विधाता सफल हुआ है अपनी कला के प्रदर्शन में आचार्य-कन्ये !"

देवयानी महाराज ययाति के मुख से निकले इन शब्दों को सुनकर आत्मविभोर हो उठी।

तभी अचानक उसे आचार्य कच का स्मरण हो आया और मुग्ध-दृष्टि से उसने ययाति से पूछा, "आचार्य कच कहाँ हैं आजकल महाराज ययाति ?

"आचार्य कच मेरे सहपाठी रहे हैं।"

"मुझे आचार्य कच ने सब-कुछ बतला दिया है आचार्य-कन्ये ! वह आपके बहुत कृतज्ञ हैं। वह अपने निर्माण में अपनी बहन देवयानी का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान मानते हैं। उन्होंने भरी सभा में मुक्त-कंठ से यह घोषणा की है कि वह जो कुछ हैं वह कभी नहीं होते, यदि देवयानी की उन पर सुकृपा न होती। वह कहते हैं कि उनके अन्दर उनकी बहन देवयानी के स्नेह ने ही संजीवनी-शक्ति का संचार किया है और उसीके बल पर वह मानव-मात्र को संजीवनी प्रदान करना चाहते हैं।"

"मुझे उनसे यही आशा थी महाराज ययाति ! भय्या ने मेरे कलुषित मन को धोकर निर्मल कर दिया। मेरे मन में जो विकार उत्पन्न हो गए थे उन्हें धो दिया। मैं भय्या की आजन्म आभारी रहूँगी। उनके त्याग और तपस्यापूर्ण जीवन ने संसार के सम्मुख जो दृष्टांत प्रस्तुत किया है वह मानव-समाज के लिए स्वयं में एक महान् संजीवनी-शक्ति है। यह संजीवनी, मुझे विश्वास है कि प्रलय को भी पराजित करके मानव-संस्कृति को सुरक्षित रख सकेगी।"

महाराज ययाति बोले, "आचार्य कच ने आर्यों और अनार्यों के

भेद-भाव को मिटाकर मानव-समाज का महान् कल्याण किया है।"

"इसमें कोई संदेह नहीं महाराज ययाति ! यह आचार्य कच की महान् कल्पना है। पिताजी ने आचार्य कच के इस कृत्य की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की थी।"

"आचार्य शुक्राचार्य ने !" आश्चर्य-चकित होकर महाराज ययाति से पूछा।

"हाँ राजन् आचार्य शुक्राचार्य ने। परन्तु आप इतने उद्विग्न-से क्यों हो उठे ?"

"उद्विग्न नहीं, महान् परिवर्तन हो गया। आचार्य की नीति की सफलता पराकाष्ठा को पहुँच गई। उसने अपने अंतिम लक्ष्य को छू लिया।" महाराज ययाति बोले।

"इसमें भी क्या अब संदेह के लिए कोई स्थान शेष रह गया है महाराज ययाति। आचार्य को पिताजी ने कल की आयोजित सभा में इस युग का महान् युगद्दष्टा घोषित किया है।" और फिर मुस्कराकर बोली, "आपको यह जानकर भी प्रसन्नता होगी कि कल ही हमारे राजन् वृषपर्वा द्वारा आपके नाम मैत्री-संदेश भी भेजा गया है।"

"मैत्री-संदेश !" सुनकर महाराज ययाति की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। ययाति समस्त देश का भ्रमण करके आ रहे थे। उनके सभी राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। केवल यही राज्य शेष रह गया था, क्यों इस राज्य के साथ किसी प्रकार का भी सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मुख्यादेश आचार्य कच ने अपने ही अधिकार में रखा था ?

महाराज ययाति आज अपने जीवन के लक्ष्य में सफल हुए। आचार्य कच के प्रति श्रद्धा से उनका मस्तक झुक गया और वह नम्र हो कर बोले, "राज-कन्ये ! इस सबका श्रेय आचार्य कच की सफल राज-नीति को पहुँचता है। मैं श्रद्धापूर्वक आचार्य का अभिवादन करता हूँ।

आपके रूप में मुझे आचार्य कच स्पष्ट अपने समक्ष खड़े दिखाई दे रहे हैं।"

इतना कहकर महाराज ययाति ने भूमि पर अपने दोनों घुटने टेककर हाथ जोड़ते हुए नेत्र बन्द कर लिए।

देवयानी की आत्मा खिल उठी। उसने स्वयं अपनी आत्मा में आचार्य कच के दर्शन किए और वह एक क्षण के लिए नेत्र बन्द किए खड़ी रही।

चन्द्रमा आकाश में ऊपर आ चुका था। पूर्णिमा का चाँद था। उसकी चाँदनी उद्यान में फैल गई थी। देवयानी ने देखा कि हर्ष से समस्त उद्यान फूल उठा था, महँक रहा था, तभी मलय पवन के एक झोंके ने दोनों के बदन में सरसराहट-सी पैदा कर दी।

रात बहुत बीत चुकी थी। देवयानी को ध्यान आया कि उसके पिताजी उसकी प्रतीक्षा में व्याकुल हो रहे होंगे।

वह बोली, "महाराज ययाति ! चलिए, आश्रम को चलें। पिताजी का मन उद्विग्न हो उठा होगा। मुझे अपने पास न पाकर पता नहीं उनकी क्या दशा हो रही होगी !"

"चलो आचार्य-कन्ये ! मुझे भी अपने सैनिकों की चिंता हो रही है। उन्होंने मेरी खोज में बन का कोना-कोना छान डाला होगा और मुझे न पाकर उनकी भयानक स्थिति हुई होगी।

मुझे भी उनकी खोज में जाना है।"

महाराज ययाति देवयानी को घोड़े पर बिठाकर आश्रम की ओर चल दिए।

: १२ :

इतनी रात्रि तक देवयानी के न लौटने पर आचार्य शुक्राचार्य चिंतित हो उठे थे। समस्त आश्रम का वातावरण विक्षुब्ध हो उठा था। आश्रम

के ब्रह्मचारी देवयानी की खोज में इधर-उधर भटक रहे थे। 'देवयानी देवयानी' कहकर उनके पुकारने से आश्रम से दूर-दूर तक की दिशाएँ 'देवयानी' शब्द से गूँज उठी थीं।

रात्रि के शांत वातारण में इस शब्द की गूँज राजा वृषपर्वा के महल से भी जाकर टकराई। शर्मिष्ठा ने यह शब्द सुना तो उसका मन भयभीत हो उठा। उसके बदन से कँपकँपी छूटने लगी। उसे लगा कि मानो उसका दम घुट रहा है। कोई उसके गले को आकर दबोच रहा है।

वह उठकर पलंग पर बैठी हो गई। उसने खिड़की से बाहर झाँक कर देखा तो कुछ दिखाई नहीं दिया। केवल चन्द्रमा आकाश में मुस्करा रहा था और उसने देखा कि उस चन्द्रमा के अन्दर बैठी देवयानी मुस्करा रही थी।

शर्मिष्ठा उससे नेत्र न मिला सकी। उसने तीव्रतापूर्वक खिड़की बन्द कर दी और फिर अपने पलंग पर आकर लेट गई। उसका श्वास तीव्र गति के साथ चलने लगा। उसे लगा कि उसे कहीं ज्वर तो नहीं हो गया। परन्तु बदन उसका पहले से भी अधिक ठंडा पड़ गया था।

शर्मिष्ठा ने बड़े प्रयत्न से साहस बटोरा। देवयानी का सुन्दर रूप उसके सम्मुख आया और हृदय में ज्वाला-सी प्रज्वलित होनी प्रारम्भ हुई।

यही वह रूप है जो इसे बचपन से आजतक अपमानित करता आया था। अपने समक्ष जिसने शर्मिष्ठा के रूप को सर्वदा छाया के ही समान देखा, कभी उसे उभरने नहीं दिया।

शर्मिष्ठा ने अपने मन को दृढ़ करके कहा, 'उसने ठीक किया, जो कुछ भी किया।' और नेत्र बन्द करके पलंग पर लेट गई। सोने की चेष्टा करने लगी, परन्तु नींद नहीं आई उसे।

उसने अपने कमरे की खिड़की को खोल दिया।

चाँदनी के प्रकाश में उसने देखा कि राज-पथ के सम्मुख आश्रम को जाने वाली सड़क पर एक घुड़सवार आ रहा था।

वह काँप उठी। उसने घुड़सवार के सामने एक स्त्री को बैठे देखा। वह समझ गई। उसे रात्रि-भर नींद नहीं आई। वह आचार्य शुक्राचार्य के क्रोधी स्वभाव से भयभीत हो उठी। स्वेद-विन्दु उसके मस्तक पर झलक आये।

वह निष्प्राण-सी होकर अपने पलंग पर गिर पड़ी और जाने कब तक अचेत-सी पड़ी रही।

उसके मन में अपने कुकृत्य पर ग्लानि होनी प्रारम्भ हो गई। देव-यानी की सरलता और उसकी अपनी कुटिलता, दोनों आकर उसके समक्ष खड़ी हो गईं।

शर्मिष्ठा सिहर उठी। उसके मन में आया कि वह देवयानी के चरणों में जाकर अपना मस्तक रख दे। वह उसे अवश्य क्षमा कर देगी।

उधर महाराज ययाति देवयानी को लेकर आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में पहुँच गए। घोड़े को उन्होंने ठीक आचार्य शुक्राचार्य को कुटिया के सम्मुख रोका और देवयानी को सावधानी से नीचे उतारा।

तब तक आचार्य शुक्राचार्य भी वहाँ आ गए। देवयानी को अपनी आँखों के सम्मुख देखकर उनके मन की चिंता दूर हो गई।

देवयानी ने अनुभव किया कि उसकी चिंता में उसके पिताजी की बहुत चितामय दशा हो रही थी।

आचार्य शुक्राचार्य ने आगे बढ़कर देवयानी को अपनी छाती से लगाया। उनके नेत्रों में जल उमड़ आया। वह कातर वाणी में बोले, "इतनी रात तक कहाँ रही देवयानी? अपने वृद्ध पिता का भी ध्यान न आया तुझे! देख रही है, मेरी क्या दशा हो गई है, तेरी प्रतीक्षा में! आश्रम का जन-बच्चा तेरी खोज में व्याकुल होकर वन-उपवनों में भटक

रहा है । तू देख रही है देवयानी ! आकाश पर मँडराते हुए पक्षियों को। इन्हें चैन नहीं पड़ा तेरे बिना । ये सो नहीं सके । ये सब तेरी ही खोज में न जाने कितनी देर से आकाश में उड़े-उड़े फिर रहे हैं !

अब देख तेरे आने पर कैसे लौट आये हैं ! सब ओर वृक्षों की डालों पर बैठे कैसी कातर-दृष्टि से तेरी ओर निहार रहे हैं ।

वह देख, सामने खड़ी तेरी गय्या, इसने तो सन्ध्या से रँभा-रँभाकर प्राण दे दिए । जा तनिक इसकी पीठ पर हाथ फेरकर कह तो दे कि 'देवयानी आ गई ।'

देवयानी ने अपनी गय्या के पास जाकर स्नेह से उसकी थूथड़ी को अपने हाथों में लेकर सहलाया और बोली, "मेरी प्यारी गय्या ! देवयानी लौट आई । वह जा तो ऐसे लोक में चुकी थी कि जहाँ से कोई लौटा नहीं, परन्तु इस अपरिचित व्यक्ति ने मुझे जाने नहीं दिया । यह मार्ग रोककर खड़ा गया और मुझे वापस तेरे पास लौटा लाया ।'

"तू कहाँ जा रही थी देवयानी !" उत्सुकतापूर्वक आचार्य शुक्राचार्य ने पूछा ।

पिताजी की बात सुनकर देवयानी के नेत्रों से अश्रु बह चले और उसने अपने हृदय की अथाह पीड़ा में डूबी हुई वह करुण-कथा अपने पिताजी को सुनाई, जिसमें शर्मिष्ठा द्वारा उसे उद्यान के जलाशय के पास ले जाने और उसे जलाशय में गिरा देने की सूचना थी ।

अन्त में वह कृतज्ञतापूर्वक महाराज ययाति की ओर संकेत करके बोली, "आप समय पर न पधारते तो आज आपकी लड़की देवयानी परलोक पहुँच जाती।"

देवयानी की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य के क्रोध का पारावार न रहा । वह क्रोध में आग-बबूला हो उठे । उन्हें अपने तन-बदन की सुध नहीं रही ।

उनके क्रोध को देखकर देवयानी काँप उठी । वह हाथ जोड़कर

बोली, "पिताजी ! शर्मिष्ठा मूर्ख लड़की है। उससे भूल हो गई। आप उस पर क्रोध न करें। मेरी वह बचपन की सहेली है, मैं उसका कोई अनिष्ठ सहन नहीं कर सकती।"

देवयानी की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य का हृदय गद्‌गद हो उठा। उनके नेत्रों से अश्रुओं की झड़ी लग गई।

तभी महाराज ययाति ने आगे बढ़कर आज्ञा माँगते हुए कहा, "आचार्य शुक्राचार्य के चरणों में आचार्योचित सम्मान प्रकट करके मैं विदा की आज्ञा चाहता हूँ।"

आचार्य शुक्राचार्य उस अपरिचित व्यक्ति की ओर देखकर कृतज्ञता-पूर्ण स्वर में बोले, "वीर युवक ! इस समय तुम आश्रम में हो। यहाँ आकर तुम्हें आश्रम के नियमों का पालन करना होगा। यहाँ आने के पश्चात् रात्रि को कोई यात्री प्रस्थान नहीं कर सकता।

रात्रि को अतिथिशाला में विश्राम करो। प्रातःकाल हम तुम्हारे सम्मान में एक सभा का आयोजन करेंगे। उसमें तुम्हारे साहसपूर्ण कार्य की प्रशंसा के साथ तुम्हें पुरस्कार दिया जायेगा।"

आचार्य शुक्राचार्य की आज्ञा को टालने की सामर्थ ययाति में नहीं थी। वह नतमस्तक होकर बोला, "जो आज्ञा आचार्य की।"

आगंतुक की शिष्टता का आचार्य शुक्राचार्य पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। उन्होंने आशा-भरी दृष्टि से महाराज ययाति की ओर देखा।

देवयानी महाराज ययाति को लेकर अतिथिशाला की ओर चली गई और उसी कुटिया में ले-जाकर उन्हें ठहराया जिसमें आचार्य कच रहा करते थे।

वहाँ पहुँचकर देवयानी बोली, "राजन् ! यही वह पुण्य कुटी है जिसमें रहकर आचार्य कच ने पाँच वर्ष का अपना अध्ययन-काल व्यतीत किया था।"

महाराज ययाति ने उस कुटिया को सादर प्रणाम किया और उसकी

मिट्टी अपने मस्तक पर लगाई ।

महाराज ययाति की आचार्य कच के व्यक्तित्व में इतनी महान् श्रद्धा देखकर देवयानी के नेत्र सजल हो उठे ।

उनके विश्राम की व्यवस्था करके देवयानी उनके भोजन के प्रवन्ध के लिए चली गई ।

देवयानी ने पाकशाला में जाकर देखा तो वहाँ एक पत्तल पर उसका अपना भोजन रखा था । यह देखकर देवयानी को आचार्य कच की उस प्रथम दिन की भेट की स्मृति हो आई जब उसने इसी प्रकार अपना भोजन आचार्य को ले जाकर दिया था ।

देवयानी भोजन की पत्तल लेकर महाराज ययाति के पास पहुँची तो महाराज ययाति खड़े हो गए । वह सरल वाणी में बोले, "आचार्य-कन्ये ! आपने इस समय बहुत कष्ट किया । मुझे अधिक भूख नहीं थी । परन्तु आपका उपहार मुझे कब-कब प्राप्त होगा ।" इतना कहकर उन्होंने भोजन की पत्तल देवयानी के हाथ से ले ली ।

भोजन करते-करते महाराज ययाति की दृष्टि पास आसन पर बैठी देवयानी पर गई तो उनके हाथ का कौर छूट गया ।

देवयानी मुस्कराकर बोली, "आपने भोजन करना क्यों वन्द कर दिया ?"

महाराज ययाति बोले, "मुझसे महान् धृष्टता बन पड़ी आचार्य-कन्ये ! क्षमा करना । मैंने भोजन प्रारम्भ करने से पूर्व आपको भोजन पर आमंत्रित नहीं किया ।"

देवयानी सरल स्वभाव से बोली, "आप कीजिए, अभी कुछ और सामग्री है, बचेगा तो मैं भी खा लूँगी ।"

देवयानी के ये शब्द सुनकर महाराज ययाति का मानस खिल उठा । उनके हृदय में एक गुदगुदी-सी पैदा हो गई। वह आत्मविभोर हो उठे। उन्होंने देवयानी के मुख-मंडल पर प्रथम वार मुग्ध दृष्टि से देखा ।

उसके नेत्र देवयानी की पुतलियों में समा गये। वह कुछ क्षण एक टक देवयानी के चेहरे पर देखते रहे।

देवयानी भी मुग्धा के समान ययाति के समक्ष बैठी रही और अपनी मधुर मुस्कान ययाति के ऊपर बिखेरती रही। दोनों मौन थे, परन्तु दोनों के मन आपस में बातें कर रहे थे।

देवयानी ने धीरे-से पूछा, "क्या देखा राजन् ?"

"त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति।" महाराज ययाति बोले।

"यह मेरा नहीं, आचार्य कच का स्वरूप है। मैं उनके विचारों की छाया-मात्र हूँ।"

महाराज ययाति प्रेमातिरेक में बोले, "आचार्य-कन्ये ! मुझे आचार्य कच ने अपनी छाया को अंक में भर लेने की अनुमति देकर भेजा है।"

"आचार्य कच ने !" आश्चर्य-चकित होकर देवयानी ने पूछा।

"हाँ आचार्य-कन्ये ! आचार्य कच ने। उनकी हार्दिक इच्छा है कि तुम सम्राज्ञी बनकर वहाँ पधारो जिससे हमारा शुष्क और नीरस वातावरण सरस हो उठे। वह तुम्हारे मुख-मंडल की आभा से अनुप्राणित हो उठे।

आचार्य कच ने एक आश्रम ठीक आचार्य शुक्राचार्य-जैसा ही निर्मित कराया है, परन्तु उनका कहना है कि अभी उसमें बहुत बड़ी कमी है।" महाराज ययाति बोले।

"वह क्या कमी है ?" देवयानी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"वह आपकी ही कमी है आचार्य-कन्ये ! आपके बिना आचार्य कच को वह आश्रम सूना-सूना-सा लगता है। उन्हें लगता है कि मानो वहाँ कुछ है ही नहीं। वह सब एक उजड़ा हुआ भूखण्ड उन्हें प्रतीत होता है।

वह कहते हैं कि इस आश्रम को सरसता प्रदान करने की शक्ति एकमात्र देवयानी में ही है। देवयानी ही यदि चाहे तो यहाँ के वृक्षों, बेलों को लहलहा सकती है, वही यदि चाहे तो इन्हें पुष्पों से आच्छादित करके महँका सकती है। वही यदि चाहे तो आश्रम के अणु-अणु में यौवन

प्रस्फुटित कर सकती है। वह यहाँ स्नेह की धारा बहा सकती वह आनन्द का साम्राज्य स्थापित कर सकती है।

मैं देख रहा हूँ आचार्य-कन्ये! और स्पष्ट देख रहा हूँ कि आप यह कार्य कर सकती हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर सकता।"

देवयानी महाराज ययाति की बात सुनते-सुनते अचेतन-सी हो गई। उसे आचार्य कच की एक-एक बात याद आने लगी। उन्होंने विदा होते समय कहा था, 'देवयानी! मैं अपने मस्तिष्क पर अविश्वास नहीं कर सकता और मेरे मस्तिष्क ने तुम्हारा गम्भीर अध्ययन किया है। मैं तुम्हें एक विशाल साम्राज्य की सम्राज्ञी के रूप में देखना चाहता हूँ।'

देवयानी का हृदय-कुसुम खिल उठा, प्रेमांकुर लहलहा उठा। उसने देखा कि उसके वक्षस्थल में सहसा ही उभार आ गया। उसका अंग-अंग फड़कने लगा। उसके नेत्रों की पुतलियों में रस भर आया। वह हँस पड़ी, खिलखिलाकर हँस पड़ी और खड़ी होकर इठलाती हुई बोली, "रसोई में जो बचा-खुचा भोजन शेष है उसे भी यहीं ले आती हूँ। फिर दोनों साथ-साथ बैठकर भोजन करेंगे।"

देवयानी उठकर चली तो महाराजा ययाति को लगा कि मानो वह स्वयं उठे चले जा रहे थे, उनका सर्वस्व देवयानी के चरणों से लिपटा चला जा रहा था। परन्तु बोल वह एक शब्द भी न सके। कुटिया में मौन बैठे रहे और सोचते रहे कि क्या सचमुच किसी प्रकार यह सम्भव हो सकता है कि यह विधाता का सुन्दरतम पुष्प उन्हें प्राप्त हो सके। उन्हें लगा कि यदि यह यहाँ से अब इस विधाता की अनुपम कलाकृति को प्राप्त किए बिना विदा हुए तो उनका जीवन नष्ट हो जायगा। वह अब रह नहीं सकेंगे देवयानी के बिना।

थोड़ी देर में देवयानी एक दूसरी पत्तल पर कुछ भोजन-सामग्री लेकर आ गई और आसन पर बैठकर खाती हुई बोली, "राजसी भजनों के समक्ष आश्रम का भोजन आपको फीका-फीका लग रहा होगा राजन्!"

देवयानी की बात सुनकर महाराजा ययाति जैसे स्वप्न से जाग्रत हो उठे। वह देवयानी के चेहरे पर सरल दृष्टि पसारकर बोले, "आचार्य-कन्ये ! यदि सच पूछो तो मुझे आज तक भोजन में कभी इतना मिठास नहीं आया, जितना आज आ रहा है।"

देवयानी मुस्कराकर बोली, "झूठ ! मैं मान नहीं सकती। आप आश्रम के भोजन के सम्मान की रक्षा के लिए इन शिष्ट शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं, वरना जंगल के इन फल-फूलों में वह आनन्द आपको कहाँ आया होगा जो राजसी व्यंजनों से प्राप्त होता है !"

महाराज ययाति उतनी ही सरल वाणी में फिर बोले, "देव-कन्ये ! ययाति ने जीवन में कभी झूठ नहीं बोला। इस देह से यह सिर उतने की भी स्थिति पैदा हो तो तब भी ययाति झूठ नहीं बोल सकता। शिष्टाचार के नाते भी कभी ययाति ने झूठ बोलना नहीं सीखा।

मैं झूठ नहीं बोलता कभी।"

महाराज ययाति का यह वाक्य सुनकर देवयानी का हृदय हिलोरें लेने लगा। उसने अनुभव किया कि वे दो प्राणी एक-दूसरे के बहुत निकट आ चुके थे।

भोजन के पश्चात् देवयानी अपनी कुटिया में चली गई और महाराज ययाति चटाई बिछाकर उस पर आराम से लेट गए।

महाराज ययाति रात्रि-भर सो नहीं सके। देवयानी का रूप उन्हें रात्रि-भर याद आता रहा।

—१३—

दूसरे दिन प्रातःकाल आचार्य शुक्राचार्य ने राजा वृषपर्वा को बुलाकर रात्रि की समस्त घटना उनके सम्मुख रखी तो राजा वृषपर्वा शर्मिष्ठा के कुकृत्य पर बहुत लज्जित हुए और क्रोध से उनके नेत्र लाल हो उठे।

वह एक क्षण के लिए भूल ही गए कि शर्मिष्ठा उनकी अपनी ही इकलौती कन्या है। वह बोले, "आचार्य! शर्मिष्ठा को प्राण-दण्ड मिलना चाहिए।"

वृषपर्वा की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य बोले, "दण्ड-विधान से तुम्हारा सम्बन्ध नहीं है राजन् ! तुम घोषणा करा दो कि संध्या को आश्रम में एक विराट सभा का आयोजन होगा।

सभा में देवयानी को बचाने वाले व्यक्ति को पुरस्कार और शर्मिष्ठा को दण्ड दिया जाएगा।"

राजा वृषपर्वा ने आचार्य शुक्राचार्य को मस्तक नवाकर वहाँ से प्रस्थान लिया और राजदूत को भेज कर नगर में आयोजित सभा की सूचना देने के लिए डोंडी पिटवा दी।

समस्त नगरी में सन्नाटा छा गया। आचार्य शुक्राचार्य के क्रोध से कोई भी व्यक्ति अपरिचित नहीं था।

शर्मिष्ठा के कुकृत्य की सभीने निन्दा की और यात्री के साहस और सम्भावनापूर्ण व्यवहार की प्रशंसा की।

धीरे-धीरे आयोजित सभा का समय आ गया।

नगर-निवासी आ-आकर सभा में एकत्रित होने लगे। थोड़ी देर में ही सभा का विशाल पंडाल भीड़ से खचाखच भर गया।

सर्वोच्च आसन पर आचार्य शुक्राचार्य पधारे। उनके निकट राज-आसन पर राजा वृषपर्वा सुशोभित थे।

दूसरी ओर महाराज ययाति और देवयानी बैठे थे।

इनसे कुछ दूरी पर एक कटघरे के अन्दर शर्मिष्ठा वन्दिनी के रूप में खड़ी थी।

सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई।

आचार्य शुक्राचार्य अपने आसन से गम्भीर वाणी में बोले, "सज्जनो ! कल रात्रि को जैसी घटना इस नगरी में घटी ऐसी पहले कभी नहीं सुनी मैंने। राजा वृषपर्वा के राज्य में सभी लोग शिष्ट और विवेकी हैं। फिर

कह नहीं सकते कि क्यों पुत्री शर्मिष्ठा के अन्दर ऐसी दुर्मति उत्पन्न हुई कि उसने अपनी बचपन की सहेली, वह सहेली जिसके हृदय में उसके प्रति सर्वदा ही एक बहन का स्नेह भरा है, देवयानी को उद्यान के जलाशय में धोखे से गिरा दिया।"

फिर महाराज ययाति की ओर संकेत करके बोले, "यह युवक यदि अकस्मात् देवयानी के पानी में गिरने का स्वर सुनकर वहाँ न पहुँच गया होता तो देवयानी आज आप लोगों के बीच नहीं होती।"

सभा में उपस्थित सज्जनों ने श्रद्धापूर्ण दृष्टि से कृतज्ञता के साथ महाराज ययाति की ओर देखा।

आचार्य शुक्राचार्य बोले, "मैं अपने राजा वृषपर्वा और आप सब की ओर से इस युवक के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मैं इस युवक को इसके इस साहस और सहृदयतापूर्ण कार्य के लिए पुरस्कृत करना चाहता हूँ, परन्तु इससे पूर्व कि मैं अपना पुरस्कार घोषित करूँ, मैं नवयुवक से चाहूँगा कि वह भरी सभा में अपना परिचय दे।"

आचार्य शुक्राचार्य की गम्भीर वाणी सुनकर महाराज ययाति अपने आसन से उठ खड़े हुए और आचार्य शुक्राचार्य के समक्ष जाकर विनम्र वाणी में बोले, "आचार्य शुक्राचार्य, राजन् वृषपर्वा और नगरी के सम्मानित जनों को राजा ययाति सादर प्रणाम करता है।"

"राजा ययाति......राजा ययाति......राजा ययाति......राजा ययाति," सभा में उपस्थित जनों के मुख से आश्चर्य के साथ निकला।

आचार्य शुक्राचार्य और राज वृषपर्वा ने भी होठों-ही-होठों में कहा, 'महाराज ययाति'।

महाराज ययाति बोले, "मैंने सहयोग और सद्भावना का संदेश लेकर अपनी नगरी से देशाटन के लिए प्रस्थान किया था। सम्पूर्ण देश के राज्यों का भ्रमण करने के पश्चात् यहाँ आने का अकस्मात् मुझे सुअवसर मिल गया। यह घटना समय से पूर्व ही मुझे आप सबके

निकट खींच लाई। मैं अपना सहयोग और सद्‌भावना का संदेश, वह महान् संदेश जिसे आचार्य शुक्राचार्य के यशस्वी शिष्य आचार्य कच ने मुझे प्रदान किया है, आप सबके सम्मुख समर्पित करता हूँ। इस संदेश का भारत के विशाल मानव-समाज ने हृदय से सम्मान किया है। मुझे पूर्ण आशा है कि यहाँ भी इसे समुचित सम्मान प्राप्त होगा।"

महाराज ययाति की बात सुनकर आचार्य शुक्राचार्य के मन को असीम शान्ति मिली। उनके मस्तिष्क में ब्राह्मण और क्षत्री की समस्या अभी तक उलझन पैदा कर रही थी परन्तु अपने शिष्य आचार्य कच के सिद्धान्त ने उसे निर्मूल घोषित कर दिया। जहाँ आर्य और अनार्य का भेद ही समाप्त हो गया वहाँ क्षत्री और ब्राह्मण के बन्धन भला कहाँ ठहर सकेंगे!

आचार्य शुक्राचार्य ने अपना विचार दृढ़ कर लिया। वह सारगर्भित वाणी में बोले, "राजन् ययाति! तुमने इस नगरी में पधारने की कृपा कर हमें आचार्य कच का जो सहयोग और सद्‌भावना का संदेश दिया, उसका हम हृदय से स्वागत करते हैं।

परन्तु भारत के अन्य राज्यों में जहाँ आपने यह संदेश दिया वहाँ आपको कोई पुरस्कार प्राप्त नहीं हुआ होगा। यहाँ आपको पुरस्कार भी मिलेगा।" कहकर आचार्य शुक्राचार्य के मुख-मंडल पर मुस्कराहट आ गई।

यह विचित्र घटना थी जो आज सभा में उपस्थित सज्जनों ने देखी, वरना आचार्य शुक्राचार्य का मुस्कान से क्या सम्बन्ध। उनके मस्तक की सलवटें चौबीस घंटों में एक क्षण के लिए भी कभी किसीने खुली हुई नहीं देखी थीं। उनके नेत्रों का रूप-वर्ण कभी बदलता नहीं था। परन्तु आज उनमें भी लाली नहीं थी। आज वहाँ भी शान्ति का साम्राज्य था।

आचार्य शुक्राचार्य देवयानी को अपने पास बुलाकर बोले, "राजन् ययाति! मेरे पास केवल एक-मात्र यह पुरस्कार है तुम्हें देने के लिए।

परन्तु वचन दो कि तुम इस पुरस्कार को प्राप्त करने के पश्चात्

अपना प्रेम किसी अन्य कुमारी को अर्पित नहीं करोगे। देवयानी तुम्हारे राज्य की सम्राज्ञी होगी।"

ययाति नत-मस्तक होकर बोले, "ययाति वचन देता है आचार्य! आपकी आज्ञा का प्राण रहते पालन किया जायगा।"

आचार्य शुक्राचार्य ने सभा के मध्य देवयानी का हाथ महाराज ययाति के हाथ में देकर अपना शुभ आशीर्वाद प्रदान किया। सभा में हर्ष-ध्वनि हुई।

पुरस्कार के कार्य से निवृत्त हो कर आचार्य शुक्राचार्य की दृष्टि कटघरे में बंदिनी बनी शर्मिष्ठा की ओर गई।

आचार्य शुक्राचार्य गम्भीर वाणी में बोले, 'शर्मिष्ठा! सभा के बीच आओ।"

शर्मिष्ठा कटघरे में से निकलकर आचार्य शुक्राचार्य के सम्मुख आ गई। उसकी दृष्टि नीचे को थी और बदन से पसीना छूट रहा था।

आचार्य शुक्राचार्य बोले, "राजन् ययाति! शर्मिष्ठा देवयानी की बचपन की सहेली है। यह देवयानी से पृथक नहीं रह सकती। यह भी तुम्हारे साथ जायगी। मैं शर्मिष्ठा को भी तुम्हें इसकी सखी-स्वरूप भेंट करता हूँ, परन्तु ध्यान रहे कि इसके साथ राजकुमारी-जैसा ही तुम्हारा व्यवहार रहेगा।"

महाराज ययाति बोले, "आचार्य की आज्ञा का पालन किया जायगा।"

सभा-जनों के हृदयों में जो भय छाया हुआ था, वह हर्ष में परिणत हो गया। शर्मिष्ठा को मिलने वाले दण्ड की काली घटा फट गई और सबने आचार्य शुक्राचार्य के निर्णय की प्रशंसा की।

शर्मिष्ठा दौड़कर देवयानी के पैरों पर गिर पड़ी। देवयानी ने शर्मिष्ठा को उठाकर छाती से लगा लिया और उसके नेत्रों के आँसू पोंछ कर बोली, "पगली, कल तुझे हुआ क्या था?"

"मैं सचमुच पागल हो गई थी बहन! मुझे क्षमा कर दो। जब तक

तुम मुझे क्षमा नहीं करोगी, मेरे चित्त को शान्ति नहीं मिलेगी।"

देवयानी ने स्नेहपूर्वक शर्मिष्ठा को क्षमा कर दिया।

तभी महाराज ययाति ने देखा कि उनके सैनिक उनकी खोज करते-करते वहाँ तक आ पहुँचे।

राजा वृषपर्वा ने सबका स्वागत किया और संध्या को महाराज ययाति के सम्मान में एक विराट भोज का आयोजन किया गया।

महाराज ययाति ने अपने एक दूत को उसी समय यह शुभ समाचार लेकर आचार्य कच के पास भेज दिया।

दूसरे दिन महाराज ययाति ने देवयानी और शर्मिष्ठा को सम्मानपूर्वक अपने रथ पर बिठलाया और आचार्य शुक्राचार्य तथा राजा वृषपर्वा को सादर प्रणाम करके अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया।

नगरी के सभी सम्मानित व्यक्तियों ने इस अवसर पर पधारकर महाराज ययाति के गौरव की प्रशंसा की और अपनी सद्भावनाएँ समर्पित कीं।

—१४—

आचार्य कच का आश्रम अब पूर्ण व्यवस्था के साथ संचालित हो उठा था। देश-विदेश के विद्यार्थी यहाँ अध्ययन करने के लिए आए हुए थे।

आचार्य कच के आश्रम की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। इस आश्रम में आर्य और अनार्य का भेद नहीं था, वर्ण-व्यवस्था का भेद नहीं था। सब जिज्ञासुओं को समान रूप से शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था।

महाराज ययाति का दूत राजधानी में आया तो राज-महल से पता चला कि आचार्य कच आश्रम में हैं।

दूत संदेश लेकर आश्रम में पहुँचा। आचार्य कच आश्रम के उद्यान में भ्रमण कर रहे थे।

दूत ने महाराज ययाति का पत्र आचार्य को दिया और सम्पूर्ण शुभ समाचार सुनाकर बोला, "महाराज, राजा को उनके अनुरूप ही वधू प्राप्त हुई, इसका हमें हार्दिक संतोष है।"

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "तो अपनी सम्राज्ञी तुम्हें सुन्दर लगीं। हमारे नगर-वासियों को भी सुन्दर लगेंगी?"

"बहुत सुन्दर लगेंगी महाराज! राज्य में लक्ष्मी आ जायगी। उनके सौन्दर्य की आभा से सारा राज्य दमक उठेगा। बहुत सुन्दर रूप दिया है उन्हें विधाता ने!" दूत बोला।

आचार्य कच ने कहा, "तुम तुरन्त जाकर महामंत्री को बुला लाओ तुम्हारी सम्राज्ञी आ रही हैं। उनके सम्मान में नगर को सजा डालो।"

"जो आज्ञा महाराज!" कहकर दूत महामन्त्री के पास चला गया और तुरन्त ही महामन्त्री आचार्य कच के पास पधारे।

आचार्य कच बोले, "महामन्त्री! आपने सुना कुछ। महाराज ययाति को पुरस्कारस्वरूप हमारे आचार्य ने अपनी कन्या देवयानी भेंट की है। तुम्हारी सम्राज्ञी आ रही हैं। उनके स्वागत में सम्पूर्ण नगरी को सजा डालो। राज्य के सब कलाकारों को बुलवाकर राज-पथों को अलंकृत करा दो। बन्दनवारों और पताकाओं से राज-महलों को शोभायमान कर दो। नगरी के सब बाग-तड़ागों को स्वच्छ बना दो। देवालयों और जलाशयों की स्वच्छता विशेष रूप से ही होनी चाहिए। तुम्हारी सम्राज्ञी को ऐसे स्थानों का भ्रमण करने की विशेष रुचि है। गंगा-तट के घाटों को ठीक करवाकर उन्हें नया बना दो। इस बार अपनी नगरी को ऐसा अलंकृत कर दो कि द्वार पर खड़े होकर महाराज ययाति को भ्रम होने लगे कि वह कहीं किसी दूसरी नगरी में तो नहीं आ गए।"

महामन्त्री का मन यह शुभ समाचार पाकर प्रफुल्लित हो उठा। वह सहर्ष बोले, "आचार्य की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन किया जायगा।"

महामन्त्री उसी समय वहाँ से जाकर इस शुभ कार्य में जुट गए। उन्होंने राज्य के सब कलाकारों को बुलवाकर नगरी को अलंकृत करने के लिए जुटा दिया। पूर्ण संलग्नता के साथ रात-दिन कार्य हुआ। रात-को-रात और दिन-को-दिन नहीं गिना गया।

आचार्य कच ने नगरी की शोभा का स्वयं निरीक्षण किया और जहाँ-जहाँ जो-जो त्रुटि उन्हें दृष्टिगोचर हुई, उन्होंने अपने समक्ष ठीक कराया।

आचार्य कच ने देखा कि सचमुच नगरी का रूप और रंग बदल गया। उन्हें स्वयं उसे पहचानने में धोखा होने लगा। उन्होंने महामन्त्री को उनकी संलग्नता और कला-कुशलता के लिए धन्यवाद दिया और बोले, "सब कुछ ठीक हो गया। अब एक ऐसा रथ सुसज्जित कराओ जिस पर बिठलाकर सम्राज्ञी को नगर की शोभा दिखाने के लिए ले जाया जायगा। इस रथ को केवल पुष्पों से अलंकृत करना है, हीरे जवाहरातों या माणिक्य और मोतियों से नहीं। वह ऋषि-कन्या हैं, प्रकृति के पुष्पों में पली हैं, हीरे-माणिक्य और मोतियों में नहीं। उनकी शोभा के मध्य वह अपनी आत्मा को घुटा-घुटा अनुभव करेंगी।"

महामन्त्री ने आचार्य कच की इस आज्ञा का भी उतनी ही तत्परता और कुशलता के साथ पालन किया।

नगरी की सब व्यवस्था ठीक करके उनका ध्यान अपने आश्रम की ओर गया। आश्रम के प्रत्येक पौधे और बेल को आचार्य कच ने स्वयं जाकर देखा। सब जलाशयों को स्वच्छ जल से पूर्ण कराया और प्रपातों को देखा। अन्त में चलते-चलते वह आश्रम की कुटियों की ओर गए और उस कुटिया पर जाकर ठहर गए जो उन्होंने ठीक उसके अनुरूप

बनवाई थी जिस कुटिया में आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम में देवयानी रहती थी।

आचार्य कच उसे देखकर सोचते रहे बहुत देर तक। वह सोचते रहे कि यह कुटिया उन्होंने व्यर्थ बनवाई। सम्राज्ञी देवयानी क्या यहाँ रहने के लिए आयेंगी ?

कुछ देर विचारों के गहरे सागर में डूबे रहे। फिर अचानक ही उनके होठों पर मुस्कान खिल उठी। उनके मन ने कहा, सम्राज्ञी का आश्रम से क्या सम्बन्ध ! परन्तु क्या कभी आचार्य कच की बहन देवयानी उनसे मिलने नहीं आयेगी ? वह आयेगी तो उसे मैं कहाँ ठहराऊँगा ? देवयानी की यह कुटिया देवयानी के ही लिए सुरक्षित रहेगी।

आचार्य कच महामंत्री से बोले, "महामंत्री, इस कुटिया को भी फूलों से सुसज्जित कराओ। इसके मार्ग में पुष्प बिछवा दो। इसकी दीवारों पर पुष्प-मालाएँ रँगवा दो। इसके आँगन में पुष्पों का बिछावन करा दो। इसके मार्ग में दोनों ओर की बंदनवारें भी पुष्प-मालाओं की ही होनी चाहिएँ।"

महामंत्री ने आचार्य कच की आज्ञा के अनुसार यह सब कार्य भी सम्पन्न किया और फिर सब लोग महाराज ययाति के स्वागत के लिए नगरी से कुछ दूर देव-मंदिर के निकट पहुँच गए।

अभी जाकर खड़े ही हुए थे कि सुदूर पश्चिम दिशा से महाराज ययाति के रथ की पताका हवा में फहराती दिखाई दी।

आचार्य कच बोले, "महाराज ययाति का रथ आ रहा है। सैनिक-गण भी उनके साथ-साथ हैं।"

उपस्थित-जनों की भीड़ अपनी सम्राज्ञी को देखने के लिए आतुर हो उठी। उनके हृदय उमंग से खिल उठे।

थोड़ी देर में महाराज ययाति का रथ आचार्य कच के सम्मुख आकर रुक गया।

एकत्रित भीड़ ने रथ पर पुष्पों की वर्षा की। आचार्य कच ने आगे बढ़कर देवयानी का स्वागत किया और पुष्प-माला देवयानी के गले में डालकर बोले, "कच अपनी सम्राज्ञी का स्वागत करता है।"

देवयानी ने उपस्थित अपार जन-समूह के समक्ष झुककर आचार्य कच की चरण-धूलि ली और अपने मस्तक पर लगाकर बोलीं, "सम्राज्ञी देवयानी आचार्य कच की चरण धूलि अपने मस्तक पर लगाकर अपने भाग्य की सराहना करती है।"

आचार्य कच शर्मिष्ठा की ओर देखकर बोले, "तुम भी आगईं शर्मिष्ठा! अपने चोर को बन्दी बनाने के लिए तुम्हें यहाँ तक आना पड़ा?"

आचार्य कच की बात सुनकर देवयानी के मुख-मंडल पर स्निग्ध मुस्कान बिखर गई।

शर्मिष्ठा बोली, "भौंरा निर्मोही हो सकता है आचार्य कच, परन्तु पुष्प अपनी सुगन्धि अपने अन्दर समेटकर नहीं रख सकता।"

"देवयानी की बात जाने दो शर्मिष्ठा! तुम अपनी बात कहो। देवयानी पराई हो गई। वह अब महाराज ययाति की धर्मपत्नी है।"

आचार्य कच की बात सुनकर शर्मिष्ठा लजा गई।

देवयानी को पुष्पों से सुसज्जित रथ पर बिठलाककर नगर की शोभा का दिग्दर्शन कराया गया।

देवयानी के साथ शर्मिष्ठा को देखकर कच का मन खिन्न हो गया। उन्होंने कुछ कहा नहीं किसीसे, परन्तु मन उनका बहुत व्याकुल हुआ। उन्हें मंगल में अमंगल का सन्देश मिला। उनका उत्साह कुछ भंग-सा हो गया।

देवयानी ने चारों ओर घूम-घूमकर देखा तो आचार्य कच का कहीं पता नहीं था। वह सीधे अपने आश्रम को चले गए। उनके मस्तिष्क को भविष्य की आशंकाओं ने घेर लिया। उन्हें लगा कि एक दिन निश्चय

ही चन्द्रमा को कुनक्षत्र ग्रस लेगा। भावी आशंका से उनका हृदय विदीर्ण हो उठा।

आचार्य कच अपने आश्रम की एकांत कुटिया में जाकर बैठ गए। उनका मन भयातुर हो उठा।

समस्त नगरी का भ्रमण करके देवयानी की सवारी राज-भवन में पहुँची तो देवयानी ने महाराज ययाति से पूछा, "आर्य कच कहीं दिखाई नहीं दे रहे ?"

देवयानी के कहने पर महाराज ययाति को ध्यान आया। वह अभी तक नगरी की शोभा देखने में ही लिप्त थे और मन-ही-मन आचार्य कच के प्रबन्ध की सराहना कर रहे थे।

महाराज ने चारों ओर दृष्टि फैलाई तो महामंत्री ने उनके सम्मुख हाथ जोड़कर निवेदन किया, "आचार्य कच ने आपको और सम्राज्ञी को आश्रम में आमंत्रित किया है।"

महाराज ययाति और सम्राज्ञी देवयानी तुरन्त आश्रम की ओर चल पड़े।

देवयानी ने आश्रम को जाकर देखा तो वह स्तम्भित-सी रह गई। उसे लगा कि जैसे वह उसी स्थान पर आ गई जहाँ से चली थी। उसने धीरे-धीरे आश्रम के उद्यान में प्रवेश किया और अमराइयों के बीच से निकली तो एक आम्र-वृक्ष के नीचे ठहर गई।

तनिक ठहरकर बोली, "राजन्, थक गई हूँ मैं। आप आचार्य कच के पास जाकर निवेदन करें कि देवयानी थककर जलाशय के निकट वाले आम्र-वृक्ष के नीचे बैठ गई।"

महाराज ययाति ने आश्रम में जाकर आचार्य कच को सूचना दी तो वह नंगे ही पैरों अपने पीताम्बर को सँभालते हुए महाराज ययाति के साथ आम्र-वृक्ष की ओर तीव्र गति से चल दिए।

उन्होंने देखा, देवयानी आम्र-वृक्ष के नीचे हरी घास में लेट रही थी।

आचार्य कच और महाराज ययाति को देखकर देवयानी बैठी होगई और मुस्कराकर बोली, "आचार्य कच ! मालूम देता है आप पिताजी के आश्रम को यहाँ उठा लाए। वहाँ की सारी आभा, सारा सौंदर्य सारी कांति मानो आपकी दासी बनकर आपके चरणों से लिपटी चली आई।"

देवयानी के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर कच का मन कमल-पुष्प के समान खिल-उठता, परन्तु वह नहीं हुआ।

देवयानी सशंकित-सी होकर बोली, "आचार्य कच ! आप मुझे स्वस्थ दिखाई नहीं दे रहे। आपके मन में अवश्य कोई पीड़ा है, जिसे आप व्यक्त नहीं कर रहे।"

"पीड़ा नहीं, महान् पीड़ा है, सम्राज्ञी ! मैं आचार्य शुक्राचार्य के आश्रम के सब पुष्प यहाँ बटोरकर लाया तो आप वहाँ के काँटे को भी अपनी गाँठ में बाँध लाईं !"

देवयानी समझ नहीं सकी कुछ। महाराज ययाति की भी कुछ समझ में नहीं आया। वे दोनों मौन बने रहे।

"आप दोनों ने जो कुछ किया है, उसका फल आप दोनों को भोगना होगा। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं कह सकता।"

महाराज ययाति भय से काँप उठे। देवयानी को अपनी भूल समझने में देर नहीं लगी। भावातिरेक में आकर उसने सचमुच अपने मार्ग में कंटक बिछा लिये।

देवयानी खड़ी होकर आचार्य कच के पैर छूकर बोली, "भूल हो गई आचार्य कच ! सचमुच भूल हो गई। परन्तु मैं कर कुछ नहीं सकती थी। पिताजी की आज्ञा का पालन करना पड़ा।"

"नहीं देवयानी ! नहीं ! आचार्य शुक्राचार्य यह कर नहीं सकते थे। तुमने उन्हें सोचने का अवसर प्रदान कर दिया। यह सब आपके भावुकतापूर्ण दुराग्रह का परिणाम है। बोलो, सच नहीं है क्या यह, जो

मैं कह रहा हूँ।" आचार्य कच बोले।

देवयानी ने आचार्य कच के सम्मुख सिर झुका लिया।

महाराज ययाति अभी भी कुछ न समझ पाये। वह मौन खड़े थे। वह भावुकतापूर्ण स्वर में बोले, "मुझसे क्या भूल बन पड़ी आचार्य कच ?"

"भूल अभी बन नहीं पड़ी आपसे, भूल होने की आशंका उत्पन्न हो गई। आपको विधाता ने स्वर्ग के शिखर और नर्क के गर्त्त के बीच लाकर खड़ा कर दिया। अब देखना होगा कि आप उस गौरवपूर्ण शिखर पर चढ़ते हैं, या नर्क के गर्त्त में गिर जाते हैं।"

"मैं स्वर्ग के उन्नत शिखर पर ही चढ़ूँगा आचार्य कच। नर्क के गर्त्त की ओर कभी मुँह करके भी नहीं देखूँगा।"

आचार्य कच मुस्करा दिए महाराज ययाति की बात सुनकर, "यह सब कुछ भविष्य बतलाएगा महाराज ! देखना होगा कि आपकी दृढ़ता कहाँ तक आपका साथ देती है। आपकी सद्‌मति कहाँ तक आप को ले जाती है।"

फिर विषय बदलकर आचार्य कच बोले, "सम्राज्ञी ! हमारा आश्रम देखा आपने। आइए, आपको वह जलाशय दिखाता हूँ जिसमें आप कमल-पुष्प लेने के लिए झुकी थीं और शर्मिष्ठा ने आपको उसमें गिरा दिया था।"

तीनों चलकर उस जलाशय के पास आये। आचार्य कच मुस्करा-कर बोले, "शर्मिष्ठा के साथ यहाँ घूमने न आना अब।"

जलाशय से आचार्य कच देवयानी को जल-प्रपात की ओर ले गए और उसके निर्मल जल की ओर संकेत करके बोले, "यह प्रपात का वह निर्मल जल है जिसमें मैं और तुम दोनों स्नान किया करते थे और यही वह प्रपात है जिसके निर्मल जल में मैंने यहाँ आकर अनेक बार आपके दर्शन किये और आपसे बातें कीं।"

यह सब देखकर देवयानी के आनंद की सीमा न रही।

आचार्य कच बोले, "चलो, अब आपको आपकी कुटिया के दर्शन करा दूँ। वह मैंने इसलिए बनवाई है कि यदि कभी मेरी बहन का मन राजमहलों से ऊब उठे तो वह उसमें आकर विश्राम कर सके। दो घड़ी अपने जीवन को फिर उसी वातावरण के बीच देख सके, जिसकी वह बचपन से अभ्यस्त रही है।"

यहाँ से तीनों उस कुटिया की ओर गए तो देवयानी उसे देखती ही रह गई और वहाँ उसके बीच बैठकर बोली, "आज विश्राम इसी कुटिया में होगा आचार्य कच !"

आचार्य-कच बोले, "यह तो होगा ही देवयानी ! अभी तो मैंने सम्राज्ञी आपको इसलिए कह दिया कि महाराज ने आपको सम्राज्ञी मान लिया।

कल आपका विधिवत् पाणिग्रहण-संस्कार तुम्हारे भय्या के इसी आश्रम में होगा और यह संस्कार आपका भाई आचार्य कच करायेगा।

तब आप वास्तव में इस नगरी की सम्राज्ञी होंगी, राज्य के विधि-विधान के अनुसार सम्राज्ञी होंगी।"

आचार्य कच के मत का महाराज ययाति ने आदर किया और रात्रि को सम्राज्ञी देवयानी को आचार्य-कच के आश्रम में छोड़कर राजभवन की ओर प्रस्थान कर गए।

आचार्य कच ने शर्मिष्ठा के इस राजमहल में आ जाने को गम्भीर दृष्टि से देखा। उनके मुख पर मुस्कान खेल उठी।

देवयानी प्रेम-भाव से बोली, "भय्या कच के होठों पर थिरकने वाली मुस्कान का मंतव्य समझ नहीं सकी।"

"तुम सब कुछ समझ लेना चाहती हो देवयानी तो समझ लो। जब मेरा कुछ भी तुमसे छिपा नहीं है, तो तुमसे क्यों छिपाऊँ ? तुम्हें मैं अपने प्राणों की संजीवनी-शक्ति मानता हूँ। तुम कहीं भी रहो

परन्तु मेरे इतनी निकट रहती हो कि मैं तुमसे हर समय बातें कर सकता हूँ। मेरे हृदय की पीड़ा को उस दिन शांति मिली जब तुमने मुस्कराकर स्वयं सांत्वना प्रदान की।

तुम जलाशय से निकलकर महाराज ययाति के साथ आचार्य शुक्राचार्य के पास पहुँचीं तो वह क्रोध में पागल हो उठे थे। तुमने अपनी शीतल वाणी में शर्मिष्ठा के प्रेम को भरकर उनके जलते हुए हृदय पर उँड़ेल दिया। तुम्हें क्या पता कि ऐसा करके तुमने अनभिज्ञता में ही महान् अनर्थ कर डाला!

आचार्य शुक्राचार्य को सोचने-विचारने के लिए रात्रि-भर का समय मिल गया।

तुम्हें पता होना चाहिए कि तुम्हारे भाई कच की राजनीति ने आचार्य शुक्राचार्य की राजनीति को जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक दिया है।

आचार्य शुक्राचार्य ने मुझे आशीर्वाद भी दिया और महाराज ययाति को पुरस्कार भी परन्तु शर्मिष्ठा को तुम्हारे साथ भेजकर आचार्य ने जो किया उसे भविष्य ही बतलायेगा। आचार्य शुक्राचार्य अपनी नीति की असफलता के क्रोध को दबा नहीं सके।

शर्मिष्ठा, आचार्य शुक्राचार्य का श्राप है जो उन्होंने देवयानी, आचार्य कच और महाराज ययाति की अन्तिम परीक्षा के लिए भेजा है।"

"तुम्हारी रहस्यमय बात मैं समझ नहीं सकी भय्या!" देवयानी सरल स्वभाव से बोलीं।

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "शर्मिष्ठा से सचेत रहना। उसके हर कार्य पर दृष्टि रखना। महाराज ययाति को शर्मिष्ठा से एकांत में मिलने का अवसर न देना। शर्मिष्ठा को हर समय अपनी ही सेवा में रखना। बस, इस समय इतना ही ध्यान रखना। समय आने पर जैसी

आवश्यकता होगी, बताऊँगा।"

बातें करते-करते न जाने कितना समय आज पलक मारते व्यतीत हो गया। इतने दिन की जुड़ी हुई बातें चलचित्र के समान दोनों के मानस-पटल पर खुलती चली गईं।

चाँदनी रात में प्रपात के पास बिछी स्फटिक शिला पर बैठे दोनों बातें करते रहे। प्राचीन स्मृतियों की मधुर कल्पनाओं में डूबते और उतारते रहे।

आज आश्रम में भय्या और बहन का विशुद्ध स्नेह छलछला उठा। आश्रम के वातावरण में आज रसीली पवन के झोके चल रहे थे। अनुपम सुगंधि-युक्त पवन बह रहा था। संजीवनी का संचार हो रहा था।

दोनों प्राणी इस निर्मल स्नेह-सागर में न जाने कब तक डुबकियाँ लगाते रहे।

—१५—

दूसरे दिन महाराज ययाति और देवयानी का शास्त्रीय ढंग से विवाह-संस्कार हुआ। विवाह-संस्कार आचार्य कच ने अपने आश्रम में सम्पन्न कराया।

राज्य-भर में एक महान् उत्सव मनाया गया। राज्य की प्रजा अपनी सम्राज्ञी को प्राप्त कर हर्षोल्लास से प्रफुल्लित हो उठी। घर-घर में प्रकाश किया गया। नगरी की शोभा देव-लोक का तिरस्कार कर उठी।

महाराज ययाति का जीवन आनंद और उल्लास की धारा में बह चला। राजमहल में राज-लक्ष्मी के आ जाने से वहाँ की शोभा बहुगुणित हो उठी।

चारों दिशाओं में रस का संचार हो उठा। राज्य सुख तथा शांति से पूर्ण हो गया। सुख-समृद्धि चतुर्दिक दृष्टिगोचर होने लगी।

नगरी में नित्य नये उत्सव मनाये जाने लगे। आमोद-प्रमोद से प्रजा-जनों के जीवन में नवीन स्फूर्ति का संचार हुआ। राज्य-भर में संजीवनी शक्ति का संचार हो उठा।

महाराज ययाति का यश गंगा की धारा के समान तप्त हृदयों के संताप को नष्ट करता हुआ भूमंडल पर छा गया।

राज्य के इसी वैभव-काल में सम्राज्ञी देवयानी के गर्भ से एक होन-हार बालक ने जन्म लिया जिसका नाम यदु रखा गया। यदु के पश्चात् देवयानी के एक पुत्र और हुआ।

सम्राज्ञी देवयानी को प्राप्त करके राजा ययाति का जीवन स्वर्ग-लोक की कल्पना को व्यर्थ मानने लगा। उन्हें दिखाई दिया कि स्वर्ग भूमि पर उतर आया।

आचार्य-कच के आश्रम की ख्याति भी दिन-प्रतिदिन देश और विदेशों तक पहुँचने लगी। महाराज ययाति के साथ-साथ आचार्य कच का जीवन भी रसमय हो उठा। सम्राज्ञी देवयानी के दोनों पुत्र अधि-कांश समय आश्रम में ही बिताते थे और आचार्य कच उनके साथ खेलते और प्रसन्न होते थे।

देवयानी के इस वैभव के प्रति धीरे-धीरे शर्मिष्ठा के मन में कुंठा उत्पन्न हो गई। उसका हृदय हर समय अंगारे के समान दहकने लगा। उसके अन्दर द्वेष की ज्वाला धू-धू करके जल उठी। आचार्य शुक्राचार्य ने उसे देवयानी के साथ उसकी दासी बनाकर भेजा। इससे कहीं उत्तम होता कि वह उसे प्राण-दण्ड दे डालते। इस प्रकार उसे जीवन-भर जलने के लिए आचार्य ने दावाग्नि में झोंक दिया।

वह देवयानी के पुत्र यदु को राजमहलों में खेलते देखती थी तो उसकी कोख में पीड़ा होने लगती थी। उसे राज-पुत्री होने पर भी वह

स्थान न मिल सका जो देवयानी को प्राप्त हुआ । राज-कन्या वह थी, सम्राज्ञी उसीको बनना चाहिए था । यह इच्छा उसके मन में धीरे-धीरे बलवती हो उठी ।

एक दिन जब महाराज ययाति अपने बाग में भ्रमण को गए तो शर्मिष्ठा भी चुपके से उनकी आँख बचाकर वहाँ पहुँच गई । महाराज ज्योंही जलाशय की ओर गए, त्योंही वह जलाशय में कूद पड़ी ।

महाराज के कानों में किसीके जलाशय में गिरने का स्वर आया तो वह तीव्र गति से उधर जा पहुँचे और पानी में कूदकर उन्होंने डूबने वाले व्यक्ति को निकालकर देखा, तो वह शर्मिष्ठा थी ।

शर्मिष्ठा पानी में महाराज ययाति से भयातंकित-सी होकर लिपट गई और अपने नेत्र बन्द कर लिए ।

महाराज ययाति उसे जल से बाहर ले आये । बाहर लाकर घास पर लिटा दिया ।

शर्मिष्ठा अचेत बनी पड़ी रही ।

महाराज ययाति ने शर्मिष्ठा के उन्मुक्त यौवन को इस प्रकार हरी घास पर बिखरा देखा तो उनका मन कुछ और-से-और होने लगा । वह शर्मिष्ठा के पास गए और धीरे-से उसकी चिबुक का स्पर्श करके बोले, "शर्मिष्ठा !" शर्मिष्ठा ने नेत्र खोल दिए ।

शर्मिष्ठा के नेत्रों में महाराज ययाति उलझकर रह गए । उसके रूप में आज उन्हें वह बाँकापन मिला जो आज तक कभी देवयानी के अन्दर वह नहीं देख पाये थे ।

शर्मिष्ठा बोली, "महाराज ! क्षमा करना । मैं भयभीत होकर आपके अंग से लिपट गई, इसके लिए बहुत लज्जित हूँ । मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था, चाहे प्राण ही क्यों न चले जाते ।"

शर्मिष्ठा के दीन वचन सुनकर महाराज ययाति को लगा कि इतने सुन्दर रूप का मैं आज तक मूल्यांकन ही न कर सका । उन्होंने शर्मिष्ठा

के विखरे केश-जाल में अपनी उँगलियाँ डालकर कहा, "शर्मिष्ठा ! तुम गिर कैसे गईं जलाशय में ? वह यह भले को हुआ कि मैं यहाँ था, वरना आज जलाशय में तुम्हारा कहीं खोज भी न मिलता ।"

शर्मिष्ठा देख रही थी कि महाराज पर उसके रूप का प्रभाव पड़ रहा था । उसने अपने यौवन को तनिक और विखराकर आँखें वक्र करके कहा, "महाराज, एक दासी चली जाती, तो आपको अनेक और दासियाँ मिल जातीं । मेरा रूप देवयानी का रूप नहीं है जो कहीं मिल ही न सके ।"

महाराज ययाति के वदन में सिहरन-सी आई और वह शर्मिष्ठा के कपोल पर हल्की-सी चपत लगाकर बोले, "पगली कहीं की ! तुझे क्या मैं कभी दासी गिनता हूँ । तू क्या अन्य दासियों के समान है । क्या मैं जानता नहीं हूँ कि तू राज-कन्या है ।"

महाराज ययाति ने इतना कहा तो शर्मिष्ठा नेत्रों में पानी भर लाई और कातर वाणी में उसाँस लेकर बोली, "महाराज, राजकुमारी मैं थी कभी । उस समय मुझे भी अपने रूप पर गर्व था । यही आपके आचार्य कच मेरी प्रतीक्षा में रातें घुला देते थे । मैं इनको अपना प्रेम प्रदान नहीं कर सकती थी । मैं राज-कन्या थी । परन्तु क्या पता था कि एक दिन राज-कन्या को यह दिन भी देखना होगा ।

परन्तु कोई बात नहीं महाराज ! मैं आपकी सेवा में भी प्रसन्न हूँ । कोई भूल तो नहीं बन पड़ी कभी दासी से ?"

महाराज ययाति शर्मिष्ठा की ओर झुकते जा रहे थे । प्रकृति के इस खुले प्रांगण में, पुष्पों से सुगंधित वाटिका के बीच, कमल-पुष्पों से आच्छादित जलाशय के पास शर्मिष्ठा का विकसित यौवन देखकर महाराज अपने को न रोक सके । महाराज ने नीचे झुककर शर्मिष्ठा का चुम्बन ले लिया ।

शर्मिष्ठा ने उनके मुँह को दूर हटाने का बनावटी उपक्रम किया

और फिर उनके नेत्रों पर वक्र दृष्टि पसारकर बोली, "महाराज ! यह आपने उचित नहीं किया। सम्राज्ञी पर भेद खुल गया तो अनिष्ट होने की सम्भावना है।" इतना कहकर शर्मिष्ठा ने अँगडाई लेते हुए धीरे से अपनी चोली की तनी खोल दी।

महाराज ययाति की दृष्टि शर्मिष्ठा के अनावृत्त वदन पर पड़ी तो मन डाँवाँडोल हो उठा। वह अपने को रोक नहीं सके और उनका हाथ अनायास ही शर्मिष्ठा के उभरे हुए वक्ष पर जा गिरा।

शर्मिष्ठा ने बनावटी उपक्रम करके खड़ी होना चाहा तो महाराज ययाति ने उसे कसकर पकड़ लिया और धीरे-से बोले, "शर्मिष्ठा ! भाग नहीं, मुझे इस प्रकार घायल करके तू भाग जाना चाहती है ?"

शर्मिष्ठा बनावटी लज्जा से सिकुड़कर बैठी हो गई और बोली, "कोई आ जायेगा यहाँ महाराज ! मेरा तो कुछ नहीं, दासी हूँ आपकी, परन्तु आपकी प्रतिष्ठा को बट्टा लगेगा।

इस समय मुझे आज्ञा दीजिए। मेरा जो कुछ भी है वह सब आपके चरणों पर अर्पित है। यह रूप और यौवन तो सब आपका ही है।"

शर्मिष्ठा चली गई, परन्तु उसके यौवन के उभार की स्मृति महाराज ययाति के मन पर बराबर बनी रही। वह उसे एक क्षण के लिए भी विस्मृत न कर सके।

महाराज ययाति और शर्मिष्ठा का सम्बन्ध धीरे-धीरे बढ़ने लगा। महाराज अवसर-बे-अवसर शर्मिष्ठा के भवन में भी जाने-आने लगे और राजमहल की दासियों में इस विषय में काना-फूसी भी चलने लगी परन्तु देवयानी से इस विषय में एक शब्द भी कहने का किसीमें साहस नहीं था।

शर्मिष्ठा गर्भवती हो गई।

यह बात भी राजमहल में फैल गई। देवयानी की प्रधान दासी वासंती को इस रहस्य का ज्ञान हुआ तो वह सम्राज्ञी से इस रहस्य

को छिपा न सकी ।

वासंती आज रात्रि को एकांत में सम्राज्ञी देवयानी से बोली, "सम्राज्ञी ! एक बात थी, जिसे मैं आज तक आप पर प्रकट करने की उत्कट इच्छा होने पर भी प्रकट करने का साहस न कर सकी ।"

"ऐसी क्या बात थी बासंती ।" सम्राज्ञी देवयानी ने मुस्कराकर कहा ।

वासंती बहुत गम्भीर थी । देवयानी ने वासंती के गाल पर अपनी छोटी उँगली लगाकर कहा, "कह पगली ! ऐसी क्या रहस्य की बात थी जिसे तू वताने में इतनी भयभीत हो उठी ?"

वासंती धीरे-से बोली, "सम्राज्ञी ! कोई दुर्भावना न मान बैठना मेरी । आपके प्रति श्रद्धा रखती हूँ, इसलिए आपका अहित देख नहीं पाती ।"

सम्राज्ञी देवयानी का मन भयभीत हो उठा । उन्होंने गम्भीर दृष्टि से वासंती की ओर देखकर कहा, "तुम निर्भीक होकर कहो वासंती तुम्हें किसी प्रकार की आँच नहीं आ सकती ।"

वासंती बोली, "सम्राज्ञी ! आपके सौभाग्य पर शर्मिष्ठा ने डाका डाला है ।"

"मेरे सौभाग्य पर ! महाराज ययाति पर ! यह तुम क्या कह रही हो वासंती ! महाराज ययाति ऐसा कभी नहीं कर सकते । तुम्हें धोखा हुआ होगा भोली वासंती ! तुम्हें धोखा हुआ होगा ।"

वासंती दृढ़तापूर्वक बोली, "सम्राज्ञी ! जब तक धोखे की सम्भावना शेष थी, तब तक आपसे कहने का साहस ही न कर सकी । परन्तु अब तो उसका ज्वलंत प्रमाण सम्मुख है ।"

"वह क्या ?" आश्चर्य-चकित होकर सम्राज्ञी देवयानी बोलीं ।

शर्मिष्ठा गर्भवती है ।

"गर्भवती हो गई शर्मिष्ठा ! यह तुमने क्या कहा वासंती ! क्या

सचमुच शर्मिष्ठा गर्भवती हो गई ?" सम्राज्ञी दीन वाणी में बोलीं।

"इसमें अब संदेह के लिए कोई स्थान नहीं है।" वासंती ने दृढ़ता-पूर्वक कहा।

बातें करते-करते पर्याप्त रात बीत गई। इधर कई दिन से सम्राज्ञी देवयानी प्रतीक्षा करती थीं और महाराज नहीं आते थे। सम्राज्ञी रात-रात-भर जागकर उनकी प्रतीक्षा करती थीं और प्रातःकाल उन्हें महाराज बहुत सरल शब्दों में समझा देते थे कि वह आज-कल रात्रि को गुप्त रूप से भ्रमण करने जाते हैं।

'तो यह था महाराज का गुप्त-भ्रमण' एक लम्बा साँस लेकर सम्राज्ञी देवयानी ने कहा।

देवयानी का सारा बदन कम्पायमान हो उठा। उनके मस्तिष्क का तार-तार हिल उठा। वह विक्षिप्त-सी होकर पलंग पर गिर पड़ीं।

वासंती ने ताड़-पत्र से पवन की तो तनिक चेतना लौटी। सम्राज्ञी जल से बाहर निकाली मीन के समान तड़फड़ा रही थीं।

उन्होंने कातर वाणी में कहा, "वासंती! तुम्हें धोखा तो नहीं हुआ। वासंती ! कह दो कि तुमने धोखा खाया है। महाराज ययाति ऐसा नहीं कर सकते। सिंह शृंगालिनी की क्रोड़ में कैसे जा सकता है!"

वासंती आज पूर्ण प्रबन्ध के साथ आई थी। वह अपनी बात में तनिक भी संदेहात्मक स्थिति सम्राज्ञी के सम्मुख प्रस्तुत नहीं होने देना चाहती थी। इसीलिए आज उसने शर्मिष्ठा के भवन-द्वार में एक ऐसा छिद्र कर दिया था जिससे अन्दर की सब लीला प्रत्यक्ष देखी जा सके।

वह गम्भीर वाणी में बोली, "सम्राज्ञी ! प्रत्यक्ष आप यह लीला अपनी आँखों से चलकर देख लें। फिर भ्रम के लिए स्थान शेष नहीं रहेगा और वासंती का भी मुँह काला नहीं होगा।"

सम्राज्ञी ने वासंती की ओर देखकर कहा, "कहाँ चलना होगा

मुझे ?"

"शर्मिष्ठा के भवन तक।"

"चलो।" देवयानी ने साहस करके कहा और वह वासंती के साथ धीरे-धीरे चल दीं।

वासंती शर्मिष्ठा के द्वार में बने झरोखे के निकट सम्राज्ञी देवयानी को खड़ी करके तनिक पीछे हट गई।

सम्राज्ञी देवयानी ने उस छिद्र से कान लगाकर सुना तो सचमुच उन्हें महाराज ययाति का स्वर सुनाई दिया। शर्मिष्ठा और महाराज ययाति प्रेमालाप कर रहे थे।

देवयानी को अपने कानों पर विश्वास न हो सका। उन्होंने उस झरोखे पर अपनी आँख लगा दी और जो कुछ देखा, उसे देखकर वह प्रस्तर-शिला के समान खड़ी रह गई।

वह कुछ पीछे हट गईं। उन्हें अपनी आँखों पर भी विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने फिर ठीक से अपनी आँखों को अपने हाथ की हथेलियों से मला और सँभलकर फिर उस छिद्र के अन्दर झाँकने का प्रयास किया।

उन्होंने देखा कि महाराज पलंग पर लेटे हुए थे और शर्मिष्ठा उनके पास थी। दोनों के मुख मिले हुए थे और पारस्परिक चुम्बनों का आदान-प्रदान चल रहा था।

अब अविश्वास का कोई कारण नहीं रहा। जो सत्य था वह प्रत्यक्ष रूप से सम्राज्ञी के सम्मुख आ गया। उनके हृदय पर लगा कि मानो विधाता ने उठाकर कोई पर्वत गिरा दिया।

वह लड़खड़ाकर गिर जातीं यदि वासंती ने उन्हें पीछे से न सँभाल लिया होता। देवयानी का बदन पीपल-पत्र के समान डोल उठा था। उनका मस्तिष्क घूम गया था। उनका हृदय विदीर्ण हो गया था।

वासंती देवयानी को सँभालकर उनके राजमहल में ले आई और पलंग पर लिटा दिया। वासंती पंखे से हवा करने लगी।

थोड़ी देर पश्चात् सम्राज्ञी देवयानी तनिक सचेत हुईं तो उनके मुख से निकला, "शर्मिष्ठा गर्भवती है।'

देवयानी ने धीरे-धीरे अपने नेत्र खोले और बोली, "वासंती ! युग-द्दष्टा आचार्य कच का शक कितना साक्षात् रूप में सम्मुख आ गया।

मुझे सचमुच पिताजी ने यहाँ सम्राज्ञी बनाकर नहीं भेजा, उन्होंने मुझे अपने श्राप की वेदी पर चढ़ाने के लिए भेंट-स्वरूप भेजा था।"

वासंती देवयानी को पंखा झलती रही। वह समझ नहीं सकी सम्राज्ञी के मंतव्य को।

देवयानी ने वासंती से पूछा, "यदु और उसका भाई कहाँ हैं ?"

वासंती ने कहा, "आश्रम में।"

"आचार्य कच के पास ?"

"जी !" वासंती ने उत्तर दिया।

"तो चलो, मुझे भी वहीं चलना है।"

वासंती और देवयानी पैदल आचार्य कच के आश्रम की ओर चल दीं।

वहाँ पहुँचीं तो देखा आश्रम के उद्यान में जलाशय के पास आचार्य कच यदु और उसके छोटे भाई के साथ खेल रहे थे। दोनों बच्चे आचार्य कच से लिपट-लिपटकर मल्ल-युद्ध करना सीख रहे थे।

देवयानी के आगे बढ़ते हुए पग जड़ हो गए। उन्होंने उसाँस भर-कर कहा, "कितनी अभागी हूँ वासंती ! अपना स्वर्ग उजाड़कर अब भय्या कच का स्वर्ग नष्ट करने चली हूँ। अपनी मूर्खता से अपना और भय्या का जीवन मैंने नष्ट कर दिया।"

देवयानी धीरे-धीरे आगे बढ़कर आचार्य कच और अपने बच्चों के पास पहुँच गईं। वासंती उनके साथ थी।

सम्राज्ञी देवयानी को इस प्रकार नंगे पैर अपनी ओर आते देख

कर आचार्य कच खड़े हो गए और मधुर स्वर में बोले, "उषा काल की अनुपम बेला में सम्राज्ञी का इस प्रकार नंगे पैर आश्रम में आना क्या अभिप्राय रखता है देवयानी ?"

आचार्य कच ने देखा कि इस समय सम्राज्ञी के मुख से घोर निराशा, घोर पीड़ा और घोर संताप बरस रहे थे। इतना दयनीय और करुण वेष आज तक कभी आचार्य कच ने नहीं देखा था। उस समय भी नहीं जब देवयानी का प्रेम-प्रस्ताव आचार्य कच ने अस्वीकार कर दिया था और वह मूर्च्छित होकर आम्र-वृक्ष के नीचे उनकी अंक में पर-कटे पक्षी की भाँति गिर पड़ी थीं।

देवयानी रुद्ध कंठ से बोलीं, "भय्या कच ! आपकी आशंका ने मूर्त्त रूप ले लिया। मैं रोक नहीं सकी बसे।"

देवयानी के ये शब्द सुनकर आचार्य कच के वदन में विद्युत-सी कौंध गई। उनका बदन काँप उठा। स्वेद-विन्दु उनके मस्तक पर झलक आए। वह गम्भीर वाणी में बोले, "क्या महाराज ययाति का पतन हो गया आचार्य शुक्राचार्य का श्राप उन्हें ग्रस गया। अपने श्राप की वेदी पर अपनी एक-मात्र कन्या देवयानी की बलि चढ़ा दी आपने गुरुदेव ! यह उचित नहीं किया आपने।

मैंने आपकी राजनीति को परास्त किया, तो आपने उसका क्रोध इन निरीह प्राणियों पर प्रकट किया।

आप अपने अमोघ अस्त्र को भी अपने तरकश में न रख सके। उसका भी प्रयोग कर गए।

कोई बात नहीं आचार्य ! मैं आपके इस अस्त्र के साथ भी संघर्ष करूँगा और अपने प्राण देकर भी मानव-मात्र में सहयोग और सद्-भावना का बीजारोपण करूँगा।"

इतना कहकर आचार्य कच ठहाका मारकर हँस पड़े। उनके हास्य के स्वर से चारों दिशाएँ गूँज उठीं। उस हास्य में कितना बड़ा उपहास

छिपा था, उसके देवयानी ने प्रत्यक्ष दर्शन किए।

देवयानी तनिक अपने को संभालकर बोलीं, "आचार्य कच! एक प्रश्न पूछने आई हूँ आप से।"

"पूछो सम्राज्ञी।" आचार्य कच ने कहा।

"महाराज ययाति के इस प्रकार प्रतिज्ञा-भंग कर देने पर क्या मुझे अब इस राज्य में रहना चाहिए?"

"एक क्षण के लिए भी नहीं रहना चाहिए।"

आचार्य कच का उत्तर सुनकर सम्राज्ञी देवयानी आत्मविभोर हो उठीं। उनका मस्तक गर्व से ऊपर उठ गया। वह गद्‌गद होकर बोलीं, "आचार्य कच से मुझे इसी उत्तर की आशा थी।"

फिर कुछ ठहरकर देवयानी ने पूछा, "एक प्रश्न और करना चाहती हूँ आचार्य कच!"

"प्रश्न करो सम्राज्ञी!"

"यदि किसी राज्य का राजा प्रतिज्ञा भंग कर दे तो क्या उस राज्य के आचार्य को उस राज्य में रहना चाहिए?"

आचार्य कच मुस्करा दिए सम्राज्ञी देवयानी का प्रश्न सुनकर। वह गम्भीर वाणी में बोले, "सम्राज्ञी! जिस राज्याचार्य में प्रतिज्ञा-भंग करने वाले राजा को उसके पद से पृथक करने की शक्ति हो उसे राजा को पृथक करके राज्य की उचित व्यवस्था करनी चाहिए और जिस राज्याचार्य में इतनी शक्ति न हो उसे राज्य का परित्याग कर देना चाहिए।"

कच की बात सुनकर देवयानी को आत्म-संतोष हुआ। वह मुस्करा-कर बोलीं, "आपसे मुझे इसी उत्तर की आशा थी। अंतिम विदा लेने आई हूँ आपसे। एक दिन आप मुझसे विदा लेने के लिए अंतिम वार मेरे पास आये थे। आप मुझे निराश करके चले आये थे, परन्तु मैं ऐसा कुछ करके यहाँ से नहीं जा रही हूँ। तब आपने मुझे निराश्रित किया

था और आज आपके राजा ने ।"

देवयानी अपने दोनों पुत्रों को साथ लेकर आगे बढ़ गई। उसके शब्द आचार्य कच के कानों में गड़गड़ाहट के साथ जाने कितनी देर तक बजाते रहे।

उनका हृदय भयभीत हो उठा। वह तीव्र गति से देवयानी के पीछे पीछे दौड़ पड़े और हाँफते हुए स्वर में बोले, "देवयानी! परन्तु तुम जा कहाँ रही हो? तुम्हें यहीं रहना चाहिए। ययाति को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग पर लाना चाहिए।"

देवयानी तनिक ठहरकर मुस्कराती हुई बोलीं, "यह कार्य अब आप करते रहिए। मेरे पास यहाँ ठहरने का न तो अवकाश ही है और न धैर्य ही।

जीवन का यह दूसरा आघात मुझे निश्चय ही पागल बना देता यदि इस समय मुझे यदु का सहारा न होता। माता के लिए पुत्र ही सच्चा त्याग कर सकता है और सब नाते बनावटी हैं?"

आचार्य कच के मस्तिष्क पर गहरी ठेस लगी। वह बोले, "क्या कहा देवयानी! और सब नाते बनावटी कैसे हो सकते हैं। क्या भाई-बहन का नाता बनावटी है?

तुम्हें ठहरना होगा। मैं आज राज-सभा बुलाकर राजा ययाति के कृत्य को उसके सम्मुख रखूँगा और फिर अपने निर्णय की घोषणा करके ययाति को दण्डित करूँगा।" यह कहते-कहते आचार्य कच के नेत्रों का वर्ण लाल हो गया। उनका बदन क्रोध में थर-थर काँप रहा था।

देवयानी आचार्य कच के निकट आकर बोलीं, "मेरी भूल को क्षमा कर दो भय्या कच! मुझे इस समय जाने दो। एक दिन वह अवश्य आयेगा, जब राजन् के मानस-पटल पर मेरी आकृति फिर निखरकर आयेगी, परन्तु तब देवयानी नहीं मिलेगी।"

आचार्य कच के नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह चली! देवयानी के

नेत्रों में भी अश्रु उतर आये।

यदु और उसका छोटा भाई मौन खड़े यह सब देखते रहे।

अन्त में आचार्य कच ने आशीर्वाद देकर देवयानी और उसके पुत्रों को विदा किया। तीनों पैदल-पैदल आगे बढ़ गए। राज्य की कोई सवारी उन्होंने अपनी यात्रा के लिए ग्रहण करनी स्वीकार नहीं की।

—१६—

देवयानी यहाँ से सीधी चलकर अपने पिता शुक्राचार्य के आश्रम में गई और उन्हें सब वृत्तांत सुनाया। अपनी पुत्री की यह दशा देखकर वृद्ध पिता की आँखों के सम्मुख अंधकार छा गया।

ययाति और शर्मिष्ठा पर उन्हें बहुत क्रोध आया परन्तु देवयानी ने अपनी मधुर वाणी से शांत कर दिया।

देवयानी के चले आने पर ययाति ने देखा कि उनकी नगरी स्वर-विहीन हो गई। उन्होंने जिधर भी दृष्टि फैलाई, उन्हें सब नीरस दिखाई दिया। वह परेशान-दशा में आचार्य कच के आश्रम में पहुँचे तो आश्रम भाँय-भाँय कर रहा था। न पक्षियों का मधुर संगीत था और न वायु का सरस कंपन। आचार्य कच चिंता-निमग्न अपने आसन पर बैठे थे। उनके मुख पर वह कांति नहीं थी, जिसके उन्हें नित्य दर्शन होते थे।

ययाति आचार्य कच के निकट पहुँचे तो उन्होंने नेत्र खोल दिए और सरल वाणी में बोले, "राजा ययाति, आज प्रकृति फिर नीरस हो उठी प्रकृति की अधिष्ठात्री भी हमारे अधर्म से रूठकर चली गई।" राजा ययाति का सिर लज्जा से झुक गया। अपने कुकृत्य पर उन्हें हार्दिक खेद था। वह करुण वाणी में बोले, "आचार्य कच! आपने जो-कुछ बनाया मैंने वह सब मिटा दिया। देवयानी अब लौटकर नहीं आ सकती

श्रौर यहाँ फिर से रस का संचार नहीं हो सकता। मैंने स्वयं अपने जीवन के स्नेह में ज्वाला की लौ जला दी। इस लौ पर मुझे जलना ही होगा।"

आचार्य कच ने राजा ययाति को बहुत सांत्वना दी और वह स्वयं उनके साथ शुक्राचार्य के आश्रम पर गए। परन्तु देवयानी के समक्ष एक शब्द भी ययाति के लिए कहने का साहस न हुआ।

ययाति ने श्री शुक्राचार्य और देवयानी से क्षमा याचना की। शुक्राचार्य मौन बने रहे उनके नेत्रों में आँसू उभर आये। बस, यही उनकी मौन भाषा थी।

देवयानी सम्राज्ञी के रूप में वापस लौटने को तैयार नहीं हुईं। उनका पुत्र यदु अपने नये राज्य की स्थापना करेगा और उसके संरक्षण के लिए उनका वहीं रहना अनिवार्य था।

राजा ययाति आचार्य कच के साथ आज उस पुष्प को प्राप्त करने में असमर्थ रहे जो कभी स्वयं अपने देवता के चरणों पर समर्पित होने के लिए उतावला हो उठा था। उसके पिता ने उसे उसके पति-देवता के गले में माला बनाकर पहनाया था।

देवयानी विनम्र वाणी में बोलीं, "राजन् ! इस समय मेरा आपके साथ लौट जाना शर्मिष्ठा के ऊपर घोर अन्याय होगा। और वहाँ जाकर राज्य में कलह का बीज बोना मुझे शोभा नहीं देता। आप मेरे पति हैं, आपकी भूल मेरी भूल है। आपका वचन-भंग करना मेरा वचन-भंग करना है।

आपने अपना वचन-भंग किया, इससे मेरा और मेरे बच्चों का अनिष्ठ हुआ। अब आपने शर्मिष्ठा को जो वचन दिये हैं उन्हें तुड़वाने के लिए यदि मैं आपके साथ जाती हूँ तो जानते हो क्या होगा ?"

देवयानी की बात सुनकर ययाति फूट-फूटकर रो पड़े, वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

और यहाँ फिर से रस का संचार नहीं हो सकता। मैंने स्वयं अपने जीवन के स्नेह में ज्वाला की लौ जला दी। इस लौ पर मुझे जलना ही होगा।"

आचार्य कच ने राजा ययाति को बहुत सांत्वना दी और वह स्वयं उनके साथ शुक्राचार्य के आश्रम पर गए। परन्तु देवयानी के समक्ष एक शब्द भी ययाति के लिए कहने का साहस न हुआ।

ययाति ने श्री शुक्राचार्य और देवयानी से क्षमा याचना की। शुक्राचार्य मौन बने रहे उनके नेत्रों में आँसू उभर आये। बस, यही उनकी मौन भाषा थी।

देवयानी सम्राज्ञी के रूप में वापस लौटने को तैयार नहीं हुई। उनका पुत्र यदु अपने नये राज्य की स्थापना करेगा और उसके संरक्षण के लिए उनका वहीं रहना अनिवार्य था।

राजा ययाति आचार्य कच के साथ आज उस पुष्प को प्राप्त करने में असमर्थ रहे जो कभी स्वयं अपने देवता के चरणों पर समर्पित होने के लिए उतावला हो उठा था। उसके पिता ने उसे उसके पति-देवता के गले में माला बनाकर पहनाया था।

देवयानी विनम्र वाणी में बोलीं, "राजन्! इस समय मेरा आपके साथ लौट जाना शर्मिष्ठा के ऊपर घोर अन्याय होगा। और वहाँ जाकर राज्य में कलह का बीज बोना मुझे शोभा नहीं देता। आप मेरे पति हैं, आपकी भूल मेरी भूल है। आपका वचन-भंग करना मेरा वचन-भंग करना है।

आपने अपना वचन-भंग किया, इससे मेरा और मेरे बच्चों का अनिष्ठ हुआ। अब आपने शर्मिष्ठा को जो वचन दिये हैं उन्हें तुड़वाने के लिए यदि मैं आपके साथ जाती हूँ तो जानते हो क्या होगा?"

देवयानी की बात सुनकर ययाति फूट-फूटकर रो पड़े, वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

देवयानी ने उन्हें अपनी अंक में सँभाला और बेल-वितान की शीतल छाया में लिटा दिया। ताड़-पत्र से उन्हें हवा की और धीरे-धीरे चेतना उनके अन्दर लौट आई।

आचार्य कच देवयानी के सम्मुख हाथ जोड़कर बोले, "देवयानी! तुम्हें सम्राज्ञी के रूप में नहीं, राज-माता के रूप में प्रणाम करता हूँ। राज्य में विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों की भावी आशंका को जड़-मूल से नष्ट कर देने के लिए तुमने और तुम्हारी संतान ने जो त्याग किया है वह आर्यावर्त्त के इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों से लिखा जायगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल जब ययाति और आचार्य कच विदा होने लगे तो देवयानी मुस्कराकर ययाति से बोलीं, "आपने जिस सम्राज्ञी-पद से मुझे विभूषित किया था, वह आपका था, आपने छीन लिया परन्तु आपकी दासी का जो पद मुझे अनायास ही मिल गया, वह अभी मेरे पास सुरक्षित है। जीवन में जब आपको उसकी आवश्यकता होगी तो देवयानी आपको अपने निकट मिलेगी।" कहते-कहते देवयानी के नेत्र सजल हो उठे और ययाति की आँखों से अश्रु-धारा बह चली।

राजा ययाति और आचार्य कच विदा होकर दो पग ही आगे बढ़े थे कि आचार्य रुक गए।

उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। शोकातुर देवयानी स्थिर भाव से खड़ी थी। वह दो पग आगे बढ़कर देवयानी के पास आये और सरल वाणी में बोले, "बहन देवयानी! तुमने दासी-पद के महत्व को अमरत्व प्रदान किया, इसका मेरे हृदय में अपूर्व सम्मान है। परन्तु क्या मैं जान सकूँगा कि आपके भग्नि-पद की क्या दशा है? वह विस्मरण तो नहीं हो गया कहीं?"

देवयानी गम्भीरतापूर्वक बोली, "वह पद प्राप्त करने का है, देने का नहीं भय्या कच! इसलिए आप उसकी चिन्ता करें।"

आचार्य कच के हृदय को इतने लम्बे काल से जो पीड़ा घुन के

समान खाती चली आ रही थी, आज उन्हें उससे मुक्ति मिल गई।

वह गम्भीरतापूर्वक बोले, "कच अपनी बहन के साथ छाया के समान रहेगा देवयानी! और छाया के ही समान आज तक रहा है।"

राजा ययाति और आचार्य कच आगे बढ़कर रथ पर चढ़ गए। रथ चल पड़ा। देवयानी प्रस्तर-पुतलिका के समान शान्त खड़ी रही।

—१७—

राजा ययाति और आचार्य कच राजधानी में लौटकर आये तो दोनों का मन बहुत अशांत था।

आचार्य कच मार्ग में यही सोचते आ रहे थे कि अब उन्हें क्या करना होगा। वचन-च्युत होकर राजा ययाति राज-सिंहासन पर बैठने के अधिकारी नहीं रहे।

आचार्य कच ने राजधानी में पहुँचकर एक विराट सभा का आयोजन किया और उसके समक्ष राजा ययाति के अपराध को घोषित करके उन्हें शासक-पद से वंचित कर दिया।

राजा ययाति ने भरी सभा में अपना दोष स्वीकार किया।

इस महान् आपत्ति को सामने देखकर समस्त नगरवासियों के नेत्र छलछला आये और महाराज ययाति ने सभा के मध्य खड़े होकर योगी-वेश धारण कर लिया और फिर कभी नगर में न लौटने का व्रत लिया

आचार्य कच गम्भीर वाणी में बोले, "आप सबको यह समाचार पाकर हर्ष होगा कि हमारी सम्राज्ञी देवयानी ने अपना सम्राज्ञी-पद अपनी बचपन की सहेली शर्मिष्ठा को देकर स्वयं राज-माता का पदग्रहण कर लिया है।

महाराज ययाति का सम्पूर्ण राज्य और उसका वैभव उन्होंने

शर्मिष्ठा और शर्मिष्ठा के पुत्रों पर न्योछावर कर दिया। इस प्रकार महाराज ययाति के वचन-भंग-विष को राज-माता ने स्वयं पी लिया।

राज-माता के आदेशानुसार मैं सम्राज्ञी शर्मिष्ठा के पुत्र युवराज पुरु को सम्राट्-पद से सुशोभित करता हूँ।"

पुरु को राजपाट सौंपकर महाराज ययाति तपोवन की ओर प्रस्थान कर गए।

—१८—

ययाति और आचार्य कच के लौट आने के पश्चात् राज-माता देवयानी ने अपने पुत्रों का संरक्षण-भार सँभाला। यदु ने अपने बल-पराक्रम से कुछ ही दिनों में बहुत बड़ा राज्य स्थापित कर लिया। उनका यश चारों दिशाओं में फैल गया।

महाराज यदु ने दिग्विजय की और देश की बिखरी हुई शक्ति का संगठन किया। भारत के मध्य देश से समुद्र-तट और द्वारिकापुरी तक अपना राज्य फैलाया।

देवयानी के चिर संतप्त हृदय को यदु ने अपने यश की वर्षा करके शीतलता प्रदान की।

देवयानी अब कुमारी नहीं थी, राज-माता थी। वासना का उद्रेक समाप्त हो चुका था। कर्त्तव्य-मात्र ही सम्मुख था।

मातृ-स्नेह की शीतल छत्र-छाया में यदु का गौरवपूर्ण वेग के साथ दिग्दिगन्त में फैला।

एक दिन संध्या-समय यदु आखेट से लौटा, तो उसका मुख-मंडल स्वेदपूर्ण था। उसके चेहरे पर चिंता की रेखाएँ खिची हुई थीं।

माता देवयानी ने यदु से पूछा, "तुम इतने क्लान्त क्यों हो यदु? क्या कोई विशेष घटना सम्मुख आई आज?"

यदु बोले, "बड़ी भयंकर सूचना मिली है माँ ! दक्षिण-पथ की ओर जो सुरम्य वन है उसीमें पिताजी तपस्या कर रहे हैं। सुना है कि वहाँ की जंगली जातियों के लोग उन वनों को जलाकर भस्म कर रहे हैं।

मैं पिता की सुरक्षा के लिए इसी समय प्रस्थान करना चाहता हूँ।"

माता देवयानी का मन विचलित-सा हो उठा यह समाचार पाकर और वह भयभीत वाणी में बोलीं, "तुम तुरन्त जाओ बेटा ! अपने पिता की सुरक्षा के लिए तुम तुरन्त जाओ। ऐसा न हो कि उन्हें कहीं आँच आ जाये और उन्हें अपने साथ लेकर आओ।"

यदु उसी समय घोड़े पर सवार हो दक्षिण-पथ की ओर बढ़ गए।

माता देवयानी ने यदु के चले जाने के पश्चात् नगर में रण-भेरी का नाद घोषित कराया। आज दिन में जब यदु आखेट को गए हुए थे तो उन्हें कई अनार्य-राजाओं का सम्मिलित संदेश मिला था कि वे यदु-राज्य पर चढ़ाई कर रहे हैं।

आखेट से लौटने पर यदु को वह यह संदेश देतीं, परन्तु जो संदेश वह लेकर आया था, वह इससे कम भयंकर नहीं था। अपने पति ययाति की सुरक्षा का भार यदु को सौंपकर स्वयं राज-माता शस्त्रास्त्रों से विभूषित होकर पुर-वासियों के बीच आ खड़ी हुई।

राज-माता देवयानी का यह रूप देखकर सब लोग चौगुने उत्साह के साथ शत्रु का सामना करने के लिए उद्यत हो गए। नगर के चारों ओर दूर-दूर तक सेना को बिछा दिया गया और स्वयं माता देवयानी ने दुर्ग का भार सँभाला।

एक ही समय में दो महान् आपत्तियों ने माता देवयानी को घेर लिया परन्तु वह निश्चल थीं और कर्त्तव्य की वेदी पर आकर खड़ी हो गई थीं।

—१६—

आचार्य कच इन दिनों देशाटन के लिए निकले हुए थे। महाराज पुरु की राज्य-व्यवस्था को स्वयं घूम-घूमकर देख रहे थे। देश के लोगों में उसके राज्य के प्रति कैसी भावना है, इसका अध्ययन कर रहे थे।

तभी उन्हें यदु-राज्य पर अनार्यों के इस महान् आक्रमण की सूचना मिली।

सूचना पाते ही आचार्य कच ने निकटस्थ राज्य की चौकी से एक दूत महाराज पुरु के पास भेजा और आदेश दिया कि वह अपनी समस्त सेना को लेकर तुरन्त यदु-राज्य की सुरक्षा के लिए उनकी राजधानी में आ जाएं।

महाराज कुरु के लिए यह आदेश भेजकर आचार्य कच स्वयं यदु-वंश की राजधानी की ओर तीव्रगति वाले घोड़े पर सवार होकर चल पड़े।

उनके मन में इस समय असीम बेचैनी थी। उन्हें राजा यदु द्वारा दक्षिण-पथ की ओर महाराज ययाति की सुरक्षा के लिए प्रस्थान करने की भी सूचना मिल चुकी थी।

घोड़े की पीठ पर तीन दिन की यात्रा तय करने के पश्चात् आचार्य कच ने यदु-राज्य में प्रवेश किया और उसी दिन संध्या को वह दुर्ग-द्वार पर पहुँचे।

द्वारपाल ने आचार्य कच के पधारने की सूचना अन्दर जाकर राज-माता देवयानी को दी तो वह स्वयं खड़ी होकर पैदल आचार्य कच के स्वागत के लिए आईं और राजसी स्वागत के साथ उन्हें अन्दर लेजाकर सर्वोच्च आसन पर बिठाया।

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "बहन देवयानी ! मैंने भ्राता-पद को कलंकित तो नहीं किया ?"

आचार्य कच की बात सुनकर माता देवयानी के नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली।

वह विह्वल होकर बोलीं, "आचार्य कच ! आपने मेरी भावनाओं की कालिमा को धोकर स्वच्छ कर दिया।"

आचार्य कच मुस्कराकर बोले, "अरे देवयानी ! तुम्हारे लिए मैं आचार्य कब से हो गया ? क्या मैं ब्रह्मचारी कच नहीं रहा ?"

"तब से, जब से मैं तुम्हारे लिए राज-माता हो गई कच !" इतना कहकर देवयानी मौन रह गई।

दोनों ने एक-दूसरे के नेत्रों में झाँककर देखा तो दोनों ओर स्नेह का अपार सागर लहरा रहा था।

माता देवयानी बोलीं, "यदु भी आज यहाँ नहीं है।"

"मैं सब-कुछ सुन चुका हूँ। यदु नहीं है तो क्या हुआ ? तुम यहाँ हो, मैं यहाँ हूँ और पुत्र पुरु को मैं अपनी समस्त सेना लेकर तुरन्त इधर कूच करने का आदेश भेज चुका हूँ।"

आचार्य कच से शर्मिष्ठा के पत्र पुरु के आने का समाचार पाकर माता देवयानी को असीम संतोष हुआ। पुत्र-स्नेह से उनका हृदय गद्‌गद हो उठा।

"बहुत दिन हो गए बेटा पुरु को देखे। क्या अभी भी वह वैसा ही नटखट है ?" माता देवयानी ने पूछा।

"नटखट कम नहीं है, परन्तु आज्ञाकारी भी है देवयानी ! अपनी हर भूल को सहर्ष स्वीकार कर लेने का उसमें महान् गुण है।"

माता देवयानी मुस्कराकर बोलीं, "यह गुण उसे अपनी माता शर्मिष्ठा और अपने पिता से धरोहर के रूप में मिला है। यही उसकी सबसे बड़ी निधि है। यह न होता तो कुछ भी नहीं था फिर।"

"इसमें कोई संदेह नहीं देवयानी ! कई बार मैं उसके कुकृत्यों से खीज उठा हूँ, परन्तु फिर उसकी सरल स्वीकारोक्ति के सम्मुख मुझे

पिघल जाना पड़ा। अपने अपराध के लिए दण्डित होने में उसे आनन्द की प्राप्ति होती है, कभी कष्ट नहीं होता उसे।"

आज रात्रि-भर आचार्य कच और माता देवयानी एक क्षण के लिए भी सो नहीं सके। उनका ध्यान आक्रमण की ओर था और सचमुच प्रातःकाल पेली के फटे आक्रमणकारियों की सेना सामने दिखाई देने लगी।

इतनी बड़ी सेना माता देवयानी ने पहले कभी नहीं देखी थी, परन्तु उसका कोई प्रभाव उन पर नहीं हुआ वह सिंहनी के समान गरजती हुई दुर्ग-द्वार पर पहुँच गईं और नगर की जनता में असीम साहस और वीरता भर दी।

आचार्य कच माता देवयानी के साथ-साथ छाया के समान लगे हुए थे।

आक्रमणकारियों की सेना तीव्र गति के साथ आगे बढ़ रही थी। तभी राजमाता की उत्तर दिशा में बिठलाई हुई सेना की टुकड़ी ने उन पर आक्रमण किया। इस टुकड़ी ने शत्रु-सेना के छक्के छुड़ा दिए परन्तु शत्रु-सेना इतनी अधिक थी कि उसे समाप्त कर देना या भगा देना उस टुकड़ी की सामर्थ नहीं थी।

टुकड़ी के सभी युवक युद्ध-भूमि में खेत रहे।

शत्रु-सेना का आक्रमण ज्यों-का-त्यों बना रहा। उसकी प्रगति में कोई बाधा नहीं पड़ी।

तभी दक्षिण-दिशा वाली टुकड़ी शत्रु-सेना पर टूट पड़ी और इसने एक बार शत्रु-सेना के पैर उखाड़ दिए, परन्तु यह भी अन्त में शत्रु-सेना को समाप्त करने में असमर्थ रही और अन्त में अपने ही प्राणों की बलि देकर योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए।

इन दोनों टुकड़ियों को समाप्त करके शत्रु-सेना दुर्ग की ओर बढ़

चली। थोड़ी ही देर में उसने दुर्ग को घेर लिया।

सारा दिन घमासान युद्ध होता रहा। माता देवयानी और आचार्य कच आक्रमण का सामना करते रहे और अपने वीरों में उत्साह भरते रहे।

रात्रि-भर भी घमासान युद्ध होता रहा और शत्रु-सेना दुर्ग-द्वार पर आ गई।

आचार्य कच कुरु के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक-एक क्षण का विलम्ब इस समय युग की लम्बाई लिये प्रतीत हो रहा था। आक्रमणकारियों द्वारा दुर्ग-विध्वंस की शंका उत्पन्न हो गई थी।

तभी उनकी दृष्टि सुदूर पूर्व दिशा में फहराती हुई महाराज पुरु की पताका पर पड़ी और तभी सेना के शंख की ध्वनि भी उनके कानों में आई।

उनके आनन्द का पारावार न रहा। वह इस शुभ सूचना को देने के लिए राजमाता देवयानी की ओर लपके। देवयानी दुर्ग की बुर्जी पर खड़ी ऊपर से आक्रमणकारियों पर शस्त्रास्त्रों की वर्षा करके उन्हें दुर्ग-द्वार तक आने से रोक रही थीं।

शत्रुओं के वीर सैनिक बार-बार साहस कर-करके दुर्ग-द्वार की ओर बढ़ने का प्रयास करते थे परन्तु राजमाता देवयानी के भीषण प्रहार उनके बढ़ते हुए पग रोक देते थे।

शत्रु-सेना निराश होकर दुर्ग से तनिक दूर एकत्रित हो गई और उन्होंने अपने धनुष-बाण सँभाल लिये। दुर्ग की बुर्जी पर उन्होंने बाणों की भीषण वर्षा की। शत्रु-सेना के एक धनुर्धारी की दृष्टि राजमाता पर पड़ी, तो उसने राजमाता को ही अपना लक्ष्य बनाया।

सनसनाता हुआ तीर कौंधती विद्युत के समान राजमाता देवयानी की ओर लपका। आचार्य कच एक पग आगे बढ़कर राजमाता देवयानी की ढाल बन गए और वह प्राण-घातक तीर आचार्य कच के कलेजे में

बिंध गया ।

आचार्य कच भूमि पर गिर पड़े ।

ठीक उसी समय महाराज पुरु की सेना आ पहुँची और वह शंख-नाद करती हुई शत्रु-सेना पर टूट पड़ी ।

—२०—

आहत आचार्य कच को राजमाता देवयानी उठवाकर अपने राज-महल में ले गईं ।

तीर कलेजे में बुरी तरह बिंध गया था । उसका विष बदन में फैलने लगा था, परन्तु देवयानी ने देखा कि आचार्य कच के चेहरे पर पूर्ण आत्मसंतोष था । कोई चिन्ता नहीं थी, कोई पीड़ा नहीं थीं, कोई व्यग्रता नहीं थी । मुखाकृति वैसी ही सरल थी जैसी उस दिन आम्र-वृक्ष के नीचे पड़े मूर्च्छित कच की देवयानी ने देखी थी ।

देवयानी आचार्य कच के मस्तक पर अपना मस्तक टिकाकर फूट-फूटकर रो पड़ीं । उनके नेत्रों के आँसू आचार्य कच के नेत्रों पर बरस पड़े ।

आचार्य कच के चेहरे पर वही सरल मुस्कराहट खेल रही थी । वह वह तरल वाणी में बोले, "देवयानी ! कच पीछे तो नहीं रहा अपने हृदय-पुष्प की रक्षा में ?"

"यह तुमने क्या किया ब्रह्मचारी कच ?" विलह्व होकर माता देवयानी बोलीं । उनके नेत्रों से टपाटप आँसुओं की झड़ी लग गई ।

आचार्य कच उतनी ही सरल वाणी में बोले, "देवयानी, रो रही हो तुम ! यही तो वह समय आया है जब मेरी आत्मा मुक्त होकर अपनी दार्शनिक देवयानी की आत्मा में समाविष्ट हो सकेगी । अब समाज-शास्त्र उसके मार्ग में प्रतिबन्ध उपस्थित नहीं कर सकेगा । मेरी

यह देह, जो समाज की धरोहर है, इसे समाज को सौंपकर ही तो मैं तुम्हारे निकट आ सकता हूँ।"

देवयानी विकल होकर बोलीं, "ब्रह्मचारी कच ! तुमने मेरी मृत्यु को अपने गले का हार बना लिया। मेरे प्राणों पर अपने प्राणों की भेट चढ़ा दी।

इस जीवन में मेरे मन के अन्दर तुम्हारे विशुद्ध प्रेम के प्रति अनेक बार शंकाएँ उत्पन्न हुईं। इस समय सोच रहा हूँ कि मैंने कितना महान् अपराध किया।"

"तुम कोई पाप नहीं कर सकतीं देवयानी ! मेरा कोई अपराध तुमने नहीं किया।" और फिर तनिक बेचैनी-सी अनुभव करके बोले, "देवयानी ! तुम मेरे पास आकर बैठ जाओ और उठना नहीं उस समय तक जब तक इस देह में एक भी श्वास शेष रहे।"

माता देवआनी आचार्य कच के पास जाकर बैठ गईं। आचार्य कच बोले, "देवयानी ! आज तुम्हारे निकट जीवन-लीला समाप्त कर रहा हूँ। मृत्यु-समय तुमसे एक प्रार्थना है कि यदि तुम्हारे मन में मेरे मित्र ययाति के प्रति लेश मात्र भी क्रोध हो तो उसे मन से निकाल फेंकना। उनसे जो कुछ भी अपराध बन पड़ा वह उनकी दुर्बलता के कारण हुआ, किसी दुर्भावना के फलस्वरूप नहीं। उन्होंने अपने अपराध का प्रायश्चित्त जिस कठोर तपस्या द्वारा किया है, वह भी एक असाधारण-सी वस्तु है। मुझे विश्वास है कि तुम इसका समुचित सम्मान करोगी।"

"माता देवयानी के नेत्रों से नीर बरस पड़ा। वह विह्वल होकर बोलीं, "केवल सम्मान ही नहीं, ब्रह्मचारी कच ! मैं अपना शेष जीवन उनकी सेवा में व्यतीत करूँगी। मेरे मन में उनके प्रति लेश मात्र भी क्रोध नहीं है। उनके प्रति ही नहीं, मेरे मन में तो शर्मिष्ठा के प्रति भी सद्भावना ही है।"

आचार्य कच ने शांतिपूर्वक कहा, "अब मैं शांतिपूर्वक प्राण-त्याग कर सकूँगा देवयानी ! तुमने मेरे हृदय को वास्तविक शांति प्रदान की है। मैं हृदय से तुम्हारा आभारी हूँ। तुमने मेरे मित्र ययाति को क्षमा कर दिया इससे अधिक शांति की बात मेरे लिए अन्य कुछ नहीं हो सकती।"

इतना कहते ही आचार्य कच ने नेत्र बन्द कर लिये और फिर उनके नेत्र न खुल सके। धीरे-धीरे उनका श्वास-प्रवाह बन्द हो गया और उनका निर्जीव देह तख्त पर पड़ा रह गया।

आचार्य कच का प्राणान्त हो गया। सम्पूर्ण दुर्ग में मातम छा गया। माता देवयानी के रुदन और शोक से महल का वातावरण हृदय-विदारक हो उठा।

माता देवयानी जी-भरकर रोईं। उन्होंने आचार्य कच के चरणों की धूलि को लेकर अपने मस्तक से लगाया और गम्भीर वाणी में कहा, "आचार्य कच ! आपकी आज्ञा का उल्लंघन देवयानी नहीं कर सकती मुझे अपना दासी-व्रत भूला नहीं है।"

महराज पुरु शत्रु-सेना को परास्त करके लौटे तो उन्होंने सम्पूर्ण नगर को शोक-सागर में डूबा हुआ पाया। कारण समझ में नहीं आया कुछ।

वह सीधे राजमाता देवयानी के कमरे में पहुँचे तो राजमाता उन्हें एक तपस्विनी के वेश में मिलीं। शोक की साकार प्रतिमा के समान थीं वह।

महाराज पुरु ने माता के चरण छूकर प्रणाम किया और माता ने उसे अपनी छाती से लगाया।

महाराज पुरु ने पूछा, "राजमाता ! आचायकर्च क्या अभी तक नहीं पधारे ? आपके इस शोक का कारण क्या है ?"

माता देवयानी महाराज पुरु को साथ लेकर बराबर वाले महल में गईं और तीर से बिंधे आचार्य कच के ऊपर ढकी चादर को उघाड़

कर बोलीं, "यह है बेटा मेरे शोक का कारण। आज भारत-भूमि से धर्म, समाज और राजनीति-शास्त्र का प्रकांड पंडित उठ गया। आज देवयानी बहन का भाई कच विधाता ने उससे छीन लिया। मेरी छाती में गुभने वाला तीर भैया ने अपनी छाती पर ले लिया।"

कहते-कहते राजमाता अपने को न सँभाल सकीं और वहीं अचेत होकर भूमि पर गिर जातीं, यदि उन्हें सँभालने के लिए पुरु न होते।

पुरु ने उन्हें सावधानी से अपनी दोनों भुजाओं में भरकर ऊपर उठा लिया और दूसरे भवन में तख्त पर लिटाया।

थोड़ी देर में माता देवयानी की मूर्च्छा टूटी तो वह तुरन्त उठकर खड़ी हो गईं। पुरु ने ऐसा आकस्मिक परिवर्तन कभी किसी व्यक्ति के चेहरे पर होता नहीं देखा था, जैसा आज राजमाता देवयानी के चेहरे पर देखा।

आचार्य कच का अन्तिम संस्कार राजसी संरक्षण में गंगा-नदी के तीर पर किया गया।

दूसरे दिन महाराज पुरु को अनेक भेट देकर राजमाता ने विदा किया और चलते समय गम्भीर वाणी में कहा, "बेटा पुरु! आचार्य कच का संरक्षण-कर तुम्हारे सिर से विधाता ने उठा लिया। देखती हूँ, अब राज्य-संचालन में तुम कितनी सावधानी बरतते हो?"

पुरु ने माता देवयानी के चरण छूकर विदा ली और सेना के साथ अपनी राजधानी को कूच कर गए।

—२१—

महाराज यदु कई दिन की कठिन यात्रा तय करके उस जंगल के निकट पहुँचे जो भाँय-भाँय करके जल रहा था। तीव्र वेग से बहने वाला पवन

ज्वाला की लपटों को जंगल के एक कोने से दूसरे कोने तक फैलाता जा रहा था।

यदु अपना तीर-कमान लेकर अंगार उगलते हुए जंगल के बीच घुस गए। ज्वाला की लपटों को चीरते हुए वह उस स्थान पर पहुँचे जहाँ महाराज ययाति तपस्या कर रहे थे। उनका वदन अग्नि की लपटों से झुलसता जा रहा था।

चारों ओर से उमड़कर आती हुई भीषण दावाग्नि को वह देख रहे थे और नेत्र बन्द करके परमात्मा की भक्ति में तल्लीन हो गए थे।

तभी यदु ने अपना धनुष-बाण सँभाला और तीरों की वर्षा करके लपटों को रोकने के लिए एक बाढ़ लगा दी।

यदु ने देखा कि जिस शिला पर बैठे उनके पिता ययाति तपस्या कर रहे थे, उसमें से जल की धाराएँ फूट रही थीं। यदु ने चट्टान पर तीरों की वर्षा की तो उसमें से जल के फव्वारे फूट पड़े और उन्होंने महाराज ययाति को अपनी शीतल बौछारों के बीच घेर लिया।

लपटों की गर्मी से त्राण पाकर ययाति ने नेत्र खोले और सामने देखा तो एक धनुषधारी योद्धा खड़ा था।

ययाति का बदन बहुत कृश हो गया था। नेत्रों की शक्ति दुर्बल पड़ गई थी। वह यदु को पहचान न सके।

यदु ने आगे बढ़कर ययाति के पैरों पर मस्तक टिकाया और पितृ-भक्तिपूर्ण वाणी में कहा, "मैं आपका पुत्र यदु हूँ पिताजी! माता देवयानी का आदेश पाकर यहाँ आया हूँ।"

ययाति के हृदय में पुत्र का स्नेह उमड़ आया और उन्होंने यदु को छाती से लगाकर पूछा, "देवयानी कहाँ है बेटा?"

"चलिए, मैं आपको माताजी के पास ले चलूँ।" यदु बोले।

"नहीं बेटा! एक वचन भंग किया था तो इस दशा को प्राप्त हुआ;

यदि दूसरा वचन भंग हो गया तो न जाने क्या गति होगी !" ययाति ने करुण स्वर में कहा ।

यदु बोले, "आपका प्रण नगर में प्रवेश न करने मात्र का है पिताजी ! उसे भंग करने की आवश्यकता नहीं । हमारे नगर से थोड़ी दूर पर एक सुन्दर वनस्थली है गंगा नदी के तीर पर, आप वहीं रहकर तपस्या करें । यह प्रदेश अनार्यों द्वारा पदाक्रांत हो चुका है । आपका यहाँ रहना मैं अब उचित नहीं समझता ।"

यदु की बात महाराज ययाति ने मान ली और वह यदु के साथ चलने को उद्यत हो गए ।

यदु अपने साथ पिताजी को सावधानी से घोड़े पर बिठलाकर दावाग्नि की लपटों को चीरते हुए अपनी राजधानी की ओर बढ़ चले । पिता घोड़े पर और यदु पदल-पैदल चलते आठ-दस दिन पश्चात् गंगा-किनारे वनस्थली में पहुँचे ।

यहाँ एक स्वच्छ कुटिया बनी हुई थी । उसीमें ले जाकर यदु ने अपने पिता को ठहराया ।

वनस्थली के शीतल वातावरण में पहुँचकर ययाति के झुलसे हुए बदन को शीतलता मिली । वह कुटिया के सामने खड़े विशाल बरगद की साया में कुछ पत्ते बिछाकर उन पर लेट गए ।

पिता को यहाँ सुरक्षा से छोड़कर यदु राजधानी में आये तो समस्त नगर उन्हें विचित्र दशा में मिला । नगर-द्वार की दो बुर्जियाँ खंड-खंड हुई पड़ी थीं और फाटक कई स्थानों से दरार खा गया था ।

स्पष्ट मालूम देता था कि नगर पर शत्रु का आक्रमण हुआ था ।

नगर की यह दशा देखकर यदु क्रोध से आग-बगूला हो उठे । उनके दुर्ग पर आक्रमण करने वाले शत्रु को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने के लिए भुजदण्ड फड़क उठे ।

वह क्रोध में भरे माता देवयानी के पास पहुँचे तो वह उन्हें देख कर चकित रह गए। उनकी राजसी वेश-भूषा का कहीं पता नहीं था। तपस्विनी देवयानी मूँज के आसन पर बैठी नेत्र बन्द किए, हाथ में माला लिये, उसके एक-एक दाने को धीरे-धीरे बदल रही थीं।

यदु ने सम्मुख जाकर माता के चरणों में मस्तक टिका दिया। माता देवयानी ने नेत्र खोले और उतावलेपन में पूछा, "राजन् कहाँ हैं ?"

यदु बोले, "मैं पिताजी को अपने साथ लिवा लाया हूँ माँ। परन्तु नगर में प्रवेश करने से उन्होंने मना कर दिया। मैं उन्हें गंगा-किनारे वनस्थली में छोड़कर आया हूँ। दावाग्नि में उनका समस्त बदन झुलस गया है।"

माता देवयानी नंगे ही पैरों यदु के साथ वनस्थली की ओर चल पड़ीं और वहाँ जाकर बरगद की साया में लेटे ययाति के दर्शन किए। उनके चरणों की रज अपने मस्तक पर लगाई और बोलीं, "राजन्! दासी सेवा के लिए आ पहुँची।"

महाराज ययाति कातर-वाणी में बोले, "देवयानी! यह सब-कुछ न कहो इस समय। केवल इतना कहो कि तुमने इस अपने अपराधी को क्षमा कर दिया।"

"आपने मेरा कोई अपराध नहीं किया महाराज! मैं सेवा के लिए आप के पास आई हूँ। मुझे ऐसे शब्द कहकर लज्जित न कीजिये। मैंने निश्चय किया है कि मैं अपना शेष जीवन आपकी सेवा में ही व्यतीत करूँगी।"

माता देवयानी की बात सुनकर महाराज ययाति के हृदय में रस की धारा प्रवाहित हो चली। उन्हें लगा कि उनके जीवन की सम्पूर्ण अशांति समाप्त हो गई। वह कातर-दृष्टि से माता देवयानी की ओर देखकर बोले, "क्या सचमुच तुम अब मुझे छोड़कर कहीं नहीं जाओगी देवयानी?

देवयानी ! अब बहुत निर्बल हो गया हूँ मैं। पहले जब तुम चली गईं थीं तो मुझ में शक्ति थी। उस आधात को मैं किसी प्रकार सहन कर सका। परन्तु अब सहन करने की शक्ति शेष नहीं रही। देवयानी एक बार कहो कि तुम अब मुझे छोड़कर कहीं नहीं जाओगी।"

"वचन देती हूँ महाराज ! कि अब दासी से यह भूल इस जीवन में कभी नहीं होगी।" माता देवयानी बोलीं।

महाराज ययाति के कानों में माता देवयानी के ये शब्द पड़े तो उन्हें लगा कि नके जीवन में एक नई ताज़गी भर उठी। उनके नेत्रों का प्रकाश बदल गया। उन्होंने देवयानी के उसी रूप के दर्शन किये जिसे देखकर वह एक दिन अपने-आपको भूल गए थे।

* * *

माता देवयानी की सेवा ने महाराज ययाति को कुछ ही दिनों में पूर्ण स्वस्थ कर दिया।

आज प्रातःकाल पूजा के समय माता देवयानी बोलीं, "महाराज ! आज हम लोग पूजा माता गंगा के तीर पर करेंगे।"

"तो चलो देवयानी ! जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं चलो !" महाराज ययाति प्रसन्नतापूर्वक बोले।

माता देवयानी और महाराज ययाति गंगा-किनारे पहुँचे तो वहाँ एक छोटी-सी मढ़ी बनी हुई थी। उसे देखकर महाराज ने पूछा, "देवयानी, यह किसकी मढ़ी है ?"

माता देवयानी ने कहा, "महाराज अंजली भरकर पुष्प चढ़ाओ इस मढ़ी पर, तब वतलायी हूँ कि यह किस तपस्वी की मढ़ी है।"

महाराज ययाति ने अंजलि भरकर उस मढ़ी पर पुष्प चढ़ा दिए और प्रश्नवाचक दृष्टि से देवयानी की ओर देखा।

माता देवयानी नेत्रों से अश्रु बरसाती हुई बोलीं, "महाराज! यह उस तपस्वी की मढ़ी है जिसने विश्व को शान्ति और सद्भावना का अमर संदेश प्रदान किया। यह आपके अभिन्न मित्र आचार्य कच की मढ़ी है।"

"आचार्य कच !" कहकर महाराज ययाति विक्षिप्तावस्था में भूमि पर गिर पड़े।

माता देवयानी ने गंगा से जल लाकर उनके मुख पर छिड़का तो उन्हें चेतना लौटी। महाराज ययाति मढ़ी पर मस्तक टिकाकर फूट-फूटकर रो पड़े और शोक-भरे शब्दों में बोले, "आचार्य कच ! आपकी तपस्या, आपके निष्काम प्रेम, पांडित्य सभीके सम्मुख आपका यह पापी अधम मित्र नत मस्तक होता है।"

माता देवयानी ने बतलाया कि किस प्रकार अपने अन्तिम श्वासों के प्रवाह में आचार्य कच ने सद्भावना के साथ महाराज का स्मरण किया।